अंतराल

कक्षा 11 के लिए हिंदी (ऐच्छिक)
की पूरक पाठ्यपुस्तक

अंतराल

भाग 1

कक्षा 11 के लिए हिंदी (ऐच्छिक) की
पूरक पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
मई 2006 वैशाख 1928

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2006 पौष 1928
जून 2008 ज्येष्ठ 1930
फरवरी 2009 फाल्गुन 1930

PD 30T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006

रु. 25.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा गोपसंस पेपर्स लि., ए-14, सैक्टर-60, नोएडा 201301 द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-580-6

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग	:	*पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*शिव कुमार*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार अधिकारी	:	*गौतम गांगुली*
संपादक	:	*नरेश यादव*
सहायक उत्पादन अधिकारी	:	*राजेंद्र चौहान*

आवरण एवं सज्जा
कल्याण बैनर्जी

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभव पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों व स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है, जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या

हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस, और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान दिया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थानों और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) द्वारा नामित श्री अशोक वाजपेयी और प्रोफ़ेसर सत्यप्रकाश मिश्र को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 दिसंबर 2005

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य समन्वयक

लालचंद राम, *प्रवक्ता,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए परिषद् निगरानी समिति द्वारा नामित अशोक वाजपेयी और सत्यप्रकाश मिश्र की आभारी है।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी सहयोग के लिए परिषद् *कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज* (भाषा विभाग) परशराम कौशिक; *डी.टी.पी. ऑपरेटर* जय प्रकाश राय, सचिन कुमार, कमल कुमार और अरविंद शर्मा; *कॉपी एडीटर* अदिति ठाकुर, वरुणा मित्तल और सुप्रिया गुप्ता तथा *प्रूफ रीडर* कमलेश कुमारी की आभारी है।

इस पुस्तक के बारे में

परिषद् पाठ्यपुस्तक निर्माण के साथ-साथ पूरक पठन के लिए भी पुस्तकों का निर्माण करती है। पाठ्यपुस्तक की अपनी सीमाएँ होती हैं। साहित्य की प्रमुख विधाओं की सभी प्रमुख रचनाओं को पाठ्यपुस्तक में समेटना संभव नहीं होता इसलिए विशिष्ट रचना या सामग्री, जो विद्यार्थी की उम्र, रुचि और योग्यता के अनुरूप हो, पूरक पठन की पुस्तक में दी जाती है। पूरक पठन की पुस्तक का उद्देश्य ही है पाठ्यपुस्तक के अधूरेपन को दूर करना, उसे पूर्ण बनाना। द्रुत पठन के लिए भी विद्यार्थी पूरक पठन की पुस्तक का उपयोग कर सकते हैं। इससे पहले इस स्तर पर किसी एक विधा की पुस्तक ही निर्धारित की जाती थी किंतु व्यावहारिकता की दृष्टि से और पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम की मूल अवधारणा के मुताबिक इस बार कई विधाओं को एक साथ पूरक पठन की पुस्तक में समाहित किया गया है, ताकि विद्यार्थी ज़्यादा से ज़्यादा साहित्यिक विधाओं से परिचित हो सकें।

इस पुस्तक में कुल तीन पाठ हैं — मोहन राकेश द्वारा रचित एकांकी 'अंडे के छिलके', सुविख्यात चित्रकार मकबूल फ़िदा हुसैन की आत्मकथा 'हुसैन की कहानी अपनी ज़बानी' के दो छोटे अंश तथा विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित शरतचंद्र के जीवन पर आधारित जीवनी 'आवारा मसीहा' का प्रथम पर्व 'दिशाहारा'। यह तीनों पाठ उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी की रुचि, उम्र और योग्यता को ध्यान में रखकर चुने गए हैं ताकि विद्यार्थी इसे समझ के साथ द्रुत गति से पढ़ सकें। रोचकता की दृष्टि से तीनों पाठ उत्तम हैं।

मोहन राकेश ने आधुनिक समाज की दिखावे वाली संस्कृति और समाज की विकृति को अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया है, जहाँ परिवार में अंडे के उपयोग की मनाही के बावजूद भीतर ही भीतर सभी उसके उपयोग के पक्ष में मालूम पड़ते

हैं। परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व इस एकांकी में प्रमुखता से उभारा गया है। विद्यार्थी अपने जीवन में यथार्थ को महत्त्व दे सकें, कृत्रिमता या किसी थोथे आदर्शवाद में न पड़कर जीवन को सही दिशा दे सकें—इस पाठ का यही उद्देश्य है।

मकबूल फ़िदा हुसैन की आत्मकथा 'हुसैन की कहानी अपनी ज़बानी' का एक अंश 'बड़ौदा का बोर्डिंग स्कूल' उनके विद्यालय जीवन से जुड़ा हुआ है। यहाँ उनकी रचनात्मक प्रतिभा के अंकुर फूटे, उनके कस्बे कमाल हुनर की पहचान हुई। बड़ौदा का वह स्कूल जहाँ हुसैन की चित्रकारी का अंकुर फूटा, आज पूरी दुनिया का गर्व बना हुआ है। दूसरा अंश है, 'रानीपुर बाज़ार' जहाँ हुसैन को व्यापार की ओर मोड़ा जा रहा था, किंतु उनकी चित्रकारी का जादू अपनी ही राह तलाशता रहा और अंततः पिताजी की रोशनखयाली ने उन्हें एक महान चित्रकार बना दिया जिससे वे ज़िंदगी के रंगों से भर गए। निश्चित रूप से उनके जीवन के ये दोनों महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम विद्यार्थी जीवन से जुड़े हैं। यदि प्रतिभा विकास का सही अवसर और सही दिशा मिल जाए तो जीवन धन्य हो सकता है। विद्यार्थी, अध्यापक और अभिभावक इससे अवश्य प्रेरणा ग्रहण करेंगे, ऐसा विश्वास है।

शरत्चंद्र के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' का प्रथम पर्व 'दिशाहारा' वाकई दिशाहारा है। शरत्चंद्र के जीवन की दिशा क्या है, उनका उद्देश्य क्या है, कुछ भी तय नहीं। आवारा से आशय यहाँ सचमुच आवारा ही है। कुछ भी पहले से तय और योजनाबद्ध नहीं है। जीवन निरुद्देश्य है। ज़ाहिर है जो आवारा होगा वह दिशाहारा तो होगा ही। जीवन की शुरुआत बालसुलभ चंचलता से होती है। एक कहावत है 'सद्बुद्धि चीथड़ों में चमकती है'। अभावों के बावजूद शरत्चंद्र का व्यक्तित्व इतना सार्थक एवं सटीक बन पड़ा कि ताज्जुब होता है। स्वतंत्र व्यक्तित्व, स्वच्छंद वातावरण की तलाश वे सदैव करते रहे। स्वच्छंदता, साहस, निर्णय लेना, पहल करना, दृढ़ प्रतिज्ञा आदि कौशलों के कारण ही मन ही मन उन्होंने प्रतिज्ञा की होगी, "मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन भर सौंदर्य की उपासना करूँगा, कि मैं जीवन भर अन्याय

के विरुद्ध लड़ूँगा, कि मैं कभी छोटा काम नहीं करूँगा।" यह संकल्प ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि इस संकल्प ने ही शरत्चंद्र को महान चिंतक और रचनाकार बनाया होगा। ईमानदारी और संबंधों का निर्वाह जैसे मूल्य भी व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह पढ़कर निश्चित ही विद्यार्थी प्रेरित होंगे और अच्छा मनुष्य बनने के लिए कोई संकल्प करेंगे। जीवन के हर मोड़ पर व्यक्ति उत्कृष्ट प्रदर्शन करे आवश्यक नहीं, किंतु किसी विशेष क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन पूरे व्यक्तित्व का आईना हो सकता है, इसमें दो राय नहीं। प्रतिभा के विकास को हर समय उचित अवसर मिले आवश्यक नहीं लेकिन जब भी मिले उसका उपयोग करना चाहिए। यह उपयोग ही शरत् को शरत् बना सका। विद्यार्थी निश्चित ही इस रचना से प्रेरणा ग्रहण करेंगे, ऐसी आशा है।

पुस्तक में पाठ के साथ प्रश्न-अभ्यास दिए गए हैं, जो पाठ को रोचक बनाने, उसे स्पष्ट करने में मदद करेंगे। पुस्तक के अंत में रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है ताकि विद्यार्थी अगर रुचि लें तो उनकी अन्य रचनाएँ खोजकर पढ़ सकेंगे और रचनाकार के बारे में भी जानकारी हासिल कर सकेंगे।

आशा है विद्यार्थियों की भाषिक तथा साहित्यिक रुचियों के विकास की दृष्टि से पूरक पठन की यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक के परिष्कार के लिए आपकी प्रतिक्रिया एवं सुझाव अपेक्षित हैं।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सबमें** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

विषय सूची

आमुख **iii**

इस पुस्तक के बारे में **vii**

अंडे के छिलके
मोहन राकेश 1

हुसैन की कहानी अपनी ज़बानी
- बड़ौदा का बोर्डिंग स्कूल
- रानीपुर बाज़ार

मकबूल फ़िदा हुसैन **24**

आवारा मसीहा
- दिशाहारा

विष्णु प्रभाकर **35**

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य- भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नयी ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

अंडे के छिलके

पात्र

श्याम	वीना
राधा	गोपाल
जमुना	माधव

परदा उठने पर गैलरी वाला दरवाज़ा खुला दिखाई देता है। बाईं ओर के दरवाज़े के आगे परदा लटक रहा है जिससे पता नहीं चलता कि दरवाज़ा खुला है या बंद। कमरे में कोई नहीं है।

श्याम सीटी बजाता गैलरी से आता है, पतलून-कमीज़ के ऊपर बरसाती पहने। सिर भीगा है। बरसाती से पानी निचुड़ रहा है।

अंदर आकर वह इधर-उधर नज़र दौड़ाता है।

श्याम : अरे! कमरा खाली! न भैया न भाभी! (**पुकारकर**) भाभी!

दूसरे कमरे से वीना की आवाज़ :

वीना : कौन? ...श्याम? ...क्या बात है?

श्याम : इधर आओ, तो बताऊँ क्या बात है।

वीना उधर से आती है।

वीना : तुम्हें भी आकर इस तरह आवाज़ देने की ज़रूरत पड़ती है? इस तरह पुकार रहे थे जैसे किसी पराए घर में आए हो।

श्याम : पराया घर तो लगता ही है, भाभी। तुमने आते ही वह नक्शा बदला है इस कमरे का, कि मेरा अंदर पैर रखने का हौसला ही नहीं पड़ता। पहले तो इस कमरे की वही हालत रहती थी जो आजकल मेरे कमरे

की है। जूते को छोड़कर हर चीज़ या चारपाई पर या मेज़ पर। अब तो मुझे इस कमरे में सिर्फ़ वही एक कोना गोपाल भैया का नज़र आता है जहाँ पतलूनें और कोट एक-दूसरे के ऊपर टँगे हैं। बाकी कमरे की सरकार ही बदल गई है। भैया की टेबल भी क्या याद करती होगी कि किसी का हाथ लगा है। आजकल ऐसे चमकती है जैसे नयी-नयी पालिश होकर आई हो।

वीना : खड़े गाँव से आए हो जो खड़े-खड़े ही बात करोगे? बरसाती बाहर रख दो, सारा कमरा भिगो रहे हो। फिर बैठकर आराम से बात करो। अभी तुम्हारे भैया आते हैं तो तुम्हें चाय बना देती हूँ।

श्याम : सिर्फ़ चाय? गलत बात। ऐसे सुहाने मौसम में सूखी चाय नहीं पी जा सकती। हरगिज़ नहीं।

उसके सिर पर हाथ रखकर उसका मुँह बाहर की तरफ़ कर देती है।

वीना : यह सुहाना मौसम पहले गैलरी में छोड़ आओ। सारा फ़र्श गीला कर रहे हो।

फिर पीछे से खुद ही उसकी बरसाती उतारने लगती है।

लाओ, उतार दो बरसाती। मैं ही बाहर रख आती हूँ।

श्याम उतारते-उतारते जैसे कुछ ध्यान आ जाने से फिर से बरसाती पहन लेता है।

श्याम : भाभी, एक बात कहता हूँ।

वीना : क्या बात? बरसाती तुमने फिर से पहन ली? मैं कहती हूँ तुम तो बस...।

श्याम : भाभी, बात तो सुन लो। मैं कहता हूँ कि बरसाती आकर एक ही बार उतारूँ। चाय के साथ खाने के लिए भागकर कोई चीज़ ले आऊँ। सूखी चाय का मज़ा नहीं आएगा। इस वक्त पानी ज़रा थमा है, फिर ज़ोर से बरसने लगेगा।

वीना : फिर वही खाने की बात! कोई ऐसा भी वक्त होता है जब तुम्हें खाने की बात नहीं सूझती? ...अच्छा जाओ, मगर लाओगे क्या?

श्याम : तुम जो कहो ले आऊँ। इस वक्त गरम-गरम कचौरी और समोसे भी मिल जाएँगे और...

वीना : और क्या?

श्याम : और... और... कहो तो कोई और अच्छी चीज़ भी मिल सकती है...

वीना : बरसते पानी में जाओगे तो अच्छी चीज़ ही लाओ। समोसे-कचौरी क्या खाओगे!

श्याम : अच्छी चीज़... अं... अं... तो अच्छी चीज़ हो सकती है... अं...

वीना : जाओ, चार-छः अंडे ले आओ। मैं तुम्हें अंडे का हलुआ बना देती हूँ।

श्याम : शिव, शिव, शिव! किसी और चीज़ का नाम लो, भाभी। इस घर में अंडे का नाम ले रही हो? जाओ जल्दी से जाकर कुल्ला कर लो। मुँह भ्रष्ट हो गया होगा।

वीना : क्या बात करते हो? (**दबे स्वर में**) यहाँ रोज़ सुबह अंडे का नाश्ता होता है। तुम्हारे भाई साहब ने यह बिजली का स्टोव किसलिए लाकर रखा है? माँजी से तो कहा था कि सुबह बेड-टी लेनी होती है, रसोईघर से बनाकर लाने में ठंडी हो जाती है, इसलिए ये सोलह रुपये खर्च किए हैं। माँजी भी भोली हैं, झट मान जाती हैं। कोई इनसे पूछे कि स्टोव तो बेड-टी के लिए लाए हैं, मगर यह फ्राइंग पैन किस लिए लाए हैं? इसमें क्या दूध गरम होता है?

श्याम : संयम, संयम, संयम! ज़रा संयम से काम लो, भाभी। चार दिन जो अंडे खा लिए हैं वे छिलकों समेत वसूल हो जाएँगे। अम्माँ के कान में भनक भी पड़ गई तो सारे घर का गंगा इश्नान हो जाएगा। और तुम देख ही रही हो कि बादलों का दिन है। किसी को कुछ हो-हवा गया तो...

वीना : भई, तुम लोगों की यह बात मेरी समझ में बिलकुल नहीं आती। अगर खाना ही है तो उसमें छिपाने की क्या बात है? सबके सामने खाओ। माँजी नहीं खातीं, इसलिए रसोईघर की बजाय यहाँ कमरे में बना लेते हैं। और अंडे में जीव कहाँ होता है? जैसे दूध, वैसे अंडा।

श्याम : हरि, हरि, हरि! फिर वही नाम! भाभी, आज इस बरसते पानी में तुम जान निकलवाओगी। तुमसे कोई कुछ नहीं कहेगा। अम्माँ मेरे सिर हो जाएँगी कि सब तेरी ही करनी है। तुम खाओ, बनाओ, जो चाहे करो। मगर इस चीज़ का नाम मुँह पर मत लाओ। ...लाओ, पैसे निकालो। मैं तुम्हारे रिस्क पर ले आता हूँ। चोरी पकड़ी जाने पर अगर मेरा नाम लिया कि यह लाया है तो मैं साफ़ मुकर जाऊँगा और बेड-टी के साथ फ्राइंग पैन का रिश्ता अम्माँ को अच्छी तरह समझा दूँगा। कितने ले आऊँ–चार कि छः? ...एकाध मेरे कमरे में भी रखा होगा।

वीना : अच्छा, तो यह बात है। आप अपने कमरे में...

श्याम : (**बात काटकर**) फिर कहता हूँ भाभी कि नाम मत लो। अपने कमरे में न फ्राइंग पैन है न स्टोव जो कोई चीज़ साबित की जा सके। कच्चा लाते हैं और कच्चा खाते हैं। इसीलिए सुबह दूध की तलब कमरे में होती है। रखने-रखाने का इंतज़ाम पक्का है। मगर तुम कहो कि अम्माँ के सामने भी यह बात ज़ाहिर कर दें तो हरगिज़ नहीं। हमें अपनी अम्माँ से भी प्यार है और अपनी खुराक से भी।

वीना : बहुत अच्छी बात है न! अम्माँ की रसोई के बरतन रोज़ भ्रष्ट करते हो, यह अच्छा प्यार है! देख लेना, कल से तुम्हारा दूध का गिलास अलग न रखवा दिया तो...।

श्याम : अच्छी बात है। तुम हमारा दूध का गिलास अलग रखवा देना और हम यह फ्राइंग पैन यहाँ से उठवा देंगे। वैसे चाहो तो अब भी समझौता हो सकता है। तुम ज़बान से खाने का काम लो, शोर मचाने का नहीं, और मैं अभी जाकर आधी दर्जन वह जो तुम कह रही थीं, लाए देता हूँ। इस समझौते की खुशी में पैसे भी अपनी जेब से खर्च किए देता हूँ। मंजूर? अच्छा, टा-टा!

गैलरी की तरफ़ चल देता है।

वीना : साथ में थोड़ी किशमिश भी ले आना।

श्याम : ओ.के.। तुम इस बीच चाय का पानी रख दो। आते ही एक प्याली पीऊँगा।

चला जाता है। वीना खूँटी की तरफ़ जाकर वहाँ टँगे हुए कपड़े उतारने और तहाने लगती है।

वीना : मैं भी इस घर में आकर बस यहाँ की-सी हुई जा रही हूँ। दो दिन से कपड़े ही प्रेस नहीं किए...। साहब के कपड़ों का यह ढेर तो कभी ठीक ही नहीं होगा। मैं टाइयाँ और कपड़े अब कुर्सियों के पीछे नहीं टाँगने देती, इसलिए हर चीज़ खूँटी पर।

कपड़े उतारते हुए मोज़े का एक जोड़ा नीचे जा गिरता है।

लो, यह पुराना मोज़ा भी खूँटी पर लटकाने की चीज़ है!

कपड़े संदूक पर रखकर मोज़ा उठा लेती है। मोज़ा कुछ भारी लगता है, इसलिए उसे हाथ से मलकर देखती है।

तो यह बात है। कल और परसों के छिलके साहब ने मोज़े में भरकर यहाँ लटका रखे हैं। इनकी यह कैसी आदत है, यह मेरी समझ में नहीं आती। छिलके नाली में डाल दिए जाएँ, गंदगी दूर हो। मगर नहीं। हफ़्ता-भर छिलके इकट्ठे करेंगे, फिर डिब्बे में भरकर बाहर ले जाएँगे, जैसे किसी के लिए सौगात ले जा रहे हों।

मोज़ा कोने में डाल देती है।

अच्छा, श्याम के आने तक चाय का पानी तो रख दूँ।

केतली उठाकर बाईं ओर के दरवाज़े की तरफ़ जाती है। परदा उठाने पर दरवाज़ा बंद मिलता है। किवाड़ खटखटाती है।

राधा जीजी! ...राधा जीजी! इतनी देर में दरवाज़ा बंद करके क्यों पड़ गईं? ज़रा खोलना, मुझे अंदर नल से पानी लेना है।

कुछ क्षणों के बाद दरवाज़े की कुंडी खुलती है।

वीना : क्या बात है, जीजी? अभी संझा भी नहीं हुई और तुम दरवाज़े बंद करके पड़ गईं? मैंने सोचा कि कहीं जेठ जी न आ गए हों...।

राधा दरवाज़े से निकलकर अँगड़ाई लेती है, जैसे सचमुच बिस्तर से उठी हो।

राधा : आज दोपहर से ही शरीर कुछ टूट-सा रहा था। मैंने कहा कि थोड़ी देर लेट लूँ, फिर उठकर रोटी-वोटी का धंधा करना होगा।

वीना : यह लेटने का वक्त थोड़े ही है, बीबी? बैठो, मैं चाय बना रही हूँ, अभी सब लोग चाय पिएँगे। ये भी दफ़्तर से आने वाले ही होंगे। बैठो, मैं उधर से पानी लेकर आती हूँ।

अंदर चली जाती है। राधा अनमनी-सी खड़ी रहती है। क्षण भर बाद अंदर से वीना के हँसने का स्वर सुनाई देता है। राधा चौंककर उधर देखती है।

राधा : क्या बात है वीना? अपने आप ही हँस रही हो?

वीना एक हाथ में पानी की केतली और दूसरे हाथ में एक किताब लिए हँसती हुई उधर से आती है।

वीना : हँसने की बात नहीं है, जीजी?... यह तुम्हारी चंद्रकांता...

राधा झपटकर किताब उसके हाथ से छीनना चाहती है, मगर वीना उसे झाँसा देकर उसके पास से निकल जाती है। केतली मेज़ पर रखकर वह किताब पीछे छिपा लेती है। राधा पास आकर किताब उससे छीनने का प्रयत्न करती है।

छीनाझपटी में नहीं दूँगी, जीजी! ऐसे माँग लो तो दे दूँगी। मगर इसमें इस तरह छिपाकर पढ़ने की क्या बात है? मैंने तो चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति और भूतनाथ सब पढ़ रखी हैं। जब हम मिडिल में थीं तो स्कूल की लाइब्रेरी से लेकर पढ़ी थीं। इसमें ऐसा तो कुछ भी नहीं है कि इसे तकिए के नीचे छिपाकर रखा जाए और दरवाज़े बंद करके पढ़ा जाए।

राधा : न भइया न! हम माँजी के सामने ऐसी चीज़ कभी नहीं पढ़ सकते। कोई खराब बात चाहे न हो मगर माँजी देखेंगी तो क्या सोचेंगी कि रामायण नहीं, महाभारत नहीं, दिनभर बैठकर ऐसे किस्से ही पढ़ा करती हैं। और हम पढ़ते भी कहाँ हैं? हमको तो कौशल्या भाभी ने ज़बरदस्ती दे दी तो हम उठा लाए, नहीं हम तो ऐसी चीज़ कभी नहीं पढ़ते। घर के काम-धंधे से फ़ुरसत लगे, तो कुछ पढ़ें भी। और हमारे

पास अपनी गुटका रामायण है, कभी-कभी उसमें से ही थोड़ा-बहुत बाँच लेते हैं। तुम जानो इस घर में ये सब पढ़ेंगे तो जान नहीं निकाल दी जाएगी? यह तो कौशल्या भाभी हमारे पीछे पड़ गईं कि ज़रूर पढ़ो नहीं तो क्या...

वीना : यह तो मैं भी कहती हूँ, जीजी, कि ज़रूर पढ़ो। बहुत ही इंट्रेस्टिंग किताब है। ज़रा बचकाना टेस्ट की ज़रूर है, मगर...

राधा : (**चिढ़कर**) हाँ भाई, हम तुम्हारी तरह पढ़े-लिखे तो हैं नहीं!

वीना : मेरा यह मतलब थोड़े ही है, जीजी! मेरा मतलब तो यह है कि तुम रामायण, महाभारत पढ़ने वाली हो, तुम्हें यह किताब ज़रा बचकाना टेस्ट की मालूम होगी।

राधा : वह बात तो है ही। ...मगर सच कहें, वीना, तो इसमें भी तो शूरवीरता की ही कहानी है। जिस तरह भगवान राम सीता के लिए वन-वन में मारे-मारे फिरते हैं, उसी तरह कुँअर वीरेंद्र सिंह चंद्रकांता के लिए तिलिस्म के अंदर घूमते-फिरते हैं और...

वीना : (**हँसती हुई**) और जिस तरह भगवान राम समुद्र लाँघकर सीता का उद्धार करते हैं, उसी तरह कुँअर वीरेंद्र सिंह तिलिस्म तोड़कर चंद्रकांता का उद्धार करते हैं। तिलिस्म तोड़ना बल्कि समुद्र लाँघने से ज़्यादा मुश्किल काम है।

राधा : (**उत्सुकतापूर्वक**) अच्छा, एक बात तो बताओ, वीना। तुमने तो सारी किताब पढ़ी है। अंत में जाकर वनकन्या का क्या होता है? कुँअर वीरेंद्र सिंह के साथ उसका ब्याह हो जाता है कि नहीं? मेरा दिल तो कहता है कि हो जाता है।

वीना : हाँ, हाँ, ज़रूर हो जाता है।

राधा : और चंद्रकांता के साथ?

वीना : उसके साथ भी हो जाता है।

राधा : दोनों के साथ ही हो जाता है?

वीना : हाँ भी और नहीं भी।

राधा : हाँ भी और नहीं भी, यह कैसे?

वीना : यही बता दिया तो फिर पढ़ना क्या रह गया? जब पढ़ लोगी तो अपने आप पता चल जाएगा, (**किताब देती हुई**) यह किताब ले लो। मगर अभी से दरवाज़ा बंद करके नहीं पढ़ने दूँगी। रात को जब सब लोग सो जाएँगे तो मोमबत्ती जलाकर पढ़ना। मैं भी कई दिनों से सोचती थी कि रात को तुम मोमबत्ती जलाकर क्या करती रहती हो। ...अभी यहाँ बैठो।

उसे बाँह पकड़कर पलंग पर बैठा देती है और दी हुई किताब भी उसके हाथ से लेकर पलंग पर फेंक देती है।

राधा : अच्छा वीना, ये बाबा जी महाराज कौन हैं?

वीना : कौन से बाबा जी महाराज?

राधा : वही जो वीरेंद्र सिंह को आत्महत्या से रोकते हैं।

वीना : तुम अभी तक उसी दुनिया में घूम रही हो, जीजी? अब थोड़ी देर के लिए तो तिलिस्म से बाहर निकल आओ।

केतली स्टोव पर रखकर स्विच ऑन कर देती है। बाहर से गोपाल आता है। वर्षा की फुहार से उसके कपड़े ज़रा-ज़रा भीग रहे हैं।

गोपाल : वाह, आज केतली पहले से ही रखी हुई है! बहुत सही अंदाज़ा है वक्त का।

वीना : इस गलतफ़हमी में मत रहिए कि आपके लिए चाय का पानी रखा गया है। यह केतली श्याम के लिए रखी गई है। आप आ गए हैं इसलिए एक प्याली आपको भी मिल जाएगी।

गोपाल : क्या बात है, आजकल श्याम पर बहुत मेहरबान हो रही हो?

वीना : जीजी बैठी हैं, ये तो मुझसे ज़्यादा जानती होंगी।

गोपाल : देखो, हमारी भाभी के लिए कुछ मत कहना। हमारी भाभी देवी की प्रतिमा हैं, तुम्हारी तरह नहीं हैं। तुम तो दिनभर बैठी 'संज़ एंड लवर्ज़' पढ़ती रहती हो और भाभी पढ़ती हैं रामायण, महाभारत।

वीना : (**शरारत के लहजे में**) सच?

गोपाल : सच नहीं तो क्या? क्यों भाभी?

राधा : (**खिसियाई-सी**) भई, हम कुछ भी नहीं पढ़ते। हमें दिनभर काम से फ़ुरसत मिलती है जो पढ़ें-पढ़ाएँ? कभी दस मिनट मिल गए तो चार अक्षर बाँच लिए।

गोपाल : वक्त न मिले, यह और बात है। पर पढ़ने के लिए तुमने गुटका रामायण रख तो छोड़ी है? मन में भावना होनी चाहिए।

वीना : आज जीजी की गुटका रामायण मैं इधर उठा लाई हूँ। जीजी तो लाने ही न देती थीं। अभी-अभी आपके आने से पहले मैं इनसे समुद्र लंघन की कथा सुन रही थी।

गोपाल : यह तो बहुत ही अच्छी बात है। तुमने बी.ए. पास तो किया है, मगर जो विद्या तुम्हें भाभी से मिल सकती है, वह स्कूलों-कालेजों में नहीं पढ़ाई जाती। क्यों भाभी?

राधा : भैया, हम किसी को क्या पढ़ाएँगे? हम तो आप ही अनपढ़ हैं। हम तो वीना के पास इसीलिए आ बैठते हैं कि दो-चार अच्छे अक्षर इससे सीख जाएँ।

गोपाल : तुम, और इससे सीखोगी? यह उलटी रीत यहाँ नहीं चल सकती, भाभी! दस्तूर यही है कि बड़ा बड़े की जगह और छोटा छोटे की जगह। (**जेब से सिगरेट की डिब्बी निकालता हुआ**) इजाज़त हो तो... अ...अ...यह ज़रा...यह एक सिगरेट सुलगा लूँ। बहुत देर से नहीं पी। (**सिगरेट सुलगाता हुआ**) बारिश का दिन है, इसलिए तबीयत नहीं मानती।

वीना : आप तो कहते थे कि आप घर में किसी के सामने नहीं पीते।

गोपाल : बस सिर्फ़ भाभी के सामने पी लेता हूँ। वह भी इसलिए कि भाभी ने एक बार गैलरी में छिपकर पीते हुए देख लिया था। जब चोरी पकड़ ही ली गई तो हमने इकबाल कर लिया। उसके बाद से भाभी की इतनी मेहरबानी रही कि जब-जब ज़रूरत पड़ती थी, इनके कमरे में छिपकर पी लेते थे। आज पाँच बरस हो गए मगर मज़ाल है कि जो भाभी के अलावा किसी को पता तक चला हो।

वीना : हाँ, हाँ, क्यों पता चला होगा? बीबी ने जेठ जी को बताया थोड़े ही होगा?

राधा : हमसे कोई कसम उठवा ले जो हमने बताया हो। हमारी यह आदत नहीं है कि इधर की बात उधर और उधर की बात इधर लगाते फिरें। जब एक बार हमने कह दिया कि किसी से नहीं कहेंगे, तो किसी से नहीं कहा। दिल में रखने की बात हम दिल में ही रखते हैं।

गोपाल : और क्या? दिल में रखने की बात दिल में रखनी ही चाहिए। ...पानी खौल गया कि नहीं?

वीना : बस अभी हुआ जाता है। उतनी देर में श्याम भी आ जाएगा!

श्याम बरसाती की जेबों में हाथ डाले हुए बाहर से आता है।

श्याम : लो भाभी, ले आया। अब तुम जानो और तुम्हारा काम।

राधा को देखकर ज़रा असमंजस में पड़ जाता है।

अरे, बड़ी भाभी भी यहाँ पर हैं? तब तो...

गला साफ़ करते हुए चुप कर जाता है।

वीना : यह अपनी बरसाती तो बाहर उतार दो। अभी तक इससे पानी टपक रहा है।

श्याम : वह बात तो ठीक है भाभी, मगर...

वीना : मगर क्या?

श्याम : मगर यह कि भाभी वह जो... वह जो तुमने कहा था, वह...

वीना : लाए नहीं?

श्याम : ल-लाया तो ज़रूर हूँ म-मगर...

वीना : मगर जीजी से डर लगता है, यही न? डरने की कोई बात नहीं, जीजी किसी से नहीं कहेंगी। लाओ, निकालो।

श्याम : (**ज़रा खँखारकर**) और अगर बाद में...?

वीना : नहीं, बाद में कुछ नहीं होता। लाओ, निकालो।

गोपाल : क्या चीज़ है जिसके लिए इतनी हील-हुज्जत हो रही है?

वीना : कुछ नहीं, आधा दर्जन अंडे मँगवाए हैं। कह रहा था कि सूखी चाय नहीं पीऊँगा, तो मैंने कहा कि अंडे का हलुआ बनाए देती हूँ।

गोपाल : अंडे का हलुआ? यह तुम्हें क्या सूझी है? मैंने तुम्हें अच्छी तरह समझा दिया था, फिर भी तुम...?

वीना : (**श्याम से**) तुम क्यों काठ से वहाँ खड़े हो? अंडे मुझे दे दो, और बरसाती उतारकर बाहर रख दो। (**गोपाल से**) आपको जब दीदी से सिगरेट का छिपाव नहीं है, तो अंडे का छिपाव रखने की क्या ज़रूरत है? (**श्याम से**) लाओ श्याम, दो मुझे।

श्याम क्षण भर की हिचकिचाहट के बाद दोनों जेबों से हाथ निकालता है। उसके एक-एक हाथ में तीन-तीन अंडे हैं। वीना अंडे उससे ले लेती है और वह बरसाती उतारकर गैलरी में छोड़ आता है।

गोपाल : (**अव्यवस्थित-सा**) देखो वीना...मैंने तुमसे कहा था कि घर में...घर में यह चीज़ ठीक नहीं है। आदमी बाहर जाकर खा ले, वह और बात है। मगर घर में...

वीना : घर में घर के आदमी देख लेंगे, इतनी ही तो बात है न? तो जीजी से तो किसी बात का परदा है नहीं। ये आज न देखतीं तो किसी और दिन देख लेतीं। जब रोज़ सवेरे...

गोपाल : अलललल, क्या बक रही हो? कुछ होश की दवा करो।

राधा : सच पूछो गोपाल तो हमें इस चीज़ का पहले से ही पता है।

श्याम मुसकराता है। गोपाल बेकस-सा आराम कुरसी पर पड़ जाता है।

गोपाल : किस चीज़ का पता है?

राधा : इस चीज़ का कि रोज़ सवेरे चाय के साथ तुम्हारे कमरे में क्या बनता है। तलने की आवाज़ तो छोड़ो, तुम जानो खुशबू भी तो उधर जाती है।

गोपाल : किस चीज़ की खुशबू जाती है?

राधा : जो चीज़ बनती है, उसी की खुशबू आती है, और किस चीज़ की आएगी?

वीना : लीजिए, और छिपाइए। जीजी तो खुशबू से यह भी पहचान लेती होंगी कि किस दिन आमलेट बनता है और किस दिन अंडे फ़्राई होते हैं।

राधा : ज़रूर जान लेते हैं। आज सवेरे तुमने आमलेट बनाए थे। बनाए थे कि नहीं?

वीना : जीजी, जब तुम खुशबू पहचानती हो, तब तो ज़रूर तुम भी...

राधा : (**बात काटकर**) न। हम कभी नहीं खाते। चाहे हमें किसी की कसम दिला लो। खुशबू तो तुम जानो हर चीज़ की अलग ही होती है। खाया नहीं है तो क्या!

श्याम : सूँघा भी नहीं है? ...बड़ी भाभी, तुम्हारी नाक बहुत तेज़ है।

वीना इस बीच अंडे एक कप में तोड़ने लगती है और छिलके मेज़ पर रखती जाती है।

राधा : बड़ी भाभी की नाक ही नहीं, आँखें भी बहुत तेज़ हैं।

गोपाल : (**राधा से**) देखो भाभी, अब तुम्हें सब मालूम ही है, मगर भैया को नहीं बताना। उनका स्वभाव तो तुम जानती ही हो। माफ़ कर दें तो बड़ी-बड़ी बात माफ़ कर दें। और नाराज़ हों जाएँ तो बस छोटी से छोटी बात पर...

राधा : वे नाराज़ होते हैं तो किसी बात पर ही नाराज़ होते हैं। मगर तुम कहते हो कि उन्हें न बताऊँ, तो मैं नहीं बताऊँगी। मगर यह बात ठीक नहीं कि सब दरवाज़े खुले हैं और तुम यहाँ अंडे बना रहे हो। कोई बाहर से आ गया तो हमारा कहना न कहना सब बराबर है।

केतली में पानी खौलने लगता है। वीना अंडे फेंटती है।

गोपाल : यह बात तुम ठीक कह रही हो, भाभी। मैंने कितनी ही बार इससे कहा है कि कुछ बनाना ही हो तो सब दरवाज़े बंद कर लिया करो। श्याम, बाहर का दरवाज़ा बंद कर दे।

वीना : श्याम, पहले ज़रा ये केतली स्टोव से उतारकर उधर रख दे और मुझे घी का डिब्बा पकड़ा दे। मैं झट से हलुआ बना दूँ। बनने में तो दो-एक मिनट ही लगेंगे।

श्याम उस तरफ़ चला जाता है और उसका काम करने लगता है।

अलमारी से प्लेटें भी निकाल लो। (**राधा से**) जीजी, थोड़ा-सा हलुआ तो तुम भी लोगी न?

फ्राइंग पैन स्टोव पर रखकर उसमें घी डालती है।

राधा : (**अनमने स्वर में**) भैया, हमने कह दिया कि हमने न कभी खाया है और न ही कभी खा सकते हैं। पास बैठे हैं, इसलिए चाय की एक प्याली ज़रूर ले लेंगे।

वीना अंडे का घोल चीनी मिलाकर फ्राइंग पैन में डाल देती है और जल्दी-जल्दी हिलाने लगती है। श्याम प्लेटें निकालकर लाता है।

वीना : तुमसे कहा था साथ किशमिश भी लाना, लाए हो?

श्याम : किशमिश तो भूल ही गया, भाभी। कहो तो अब जाकर...

वीना : अब रहने दो। मुझसे यह नहीं कहना कि हलुआ अच्छा नहीं बना। बगैर किशमिश के अंडे का हलुआ!

दूर से जमुना देवी की आवाज़ सुनाई देती है:

जमुना : वीना! ओ वीना! गोपाल अभी आया है कि नहीं?

गोपाल : (**दबे हुए स्वरों में**) श्याम! तुमसे कहा था दरवाज़ा बंद कर दो और तुम...!

श्याम : अभी कर रहा हूँ।

जल्दी से जाकर दरवाज़े के किवाड़ मिला देता है और वहीं खड़ा हो जाता है।

राधा : माँजी आ रही हैं, अब जल्दी से कुछ इंतज़ाम करो।

गोपाल : हाँ, हाँ जल्दी कुछ इंतज़ाम करो। यह छिलके...यह हलुआ...

जल्दी से वीना का जंपर उठाकर छिलकों पर डाल देता है और चीनी की एक प्लेट लेकर फ्राइंग पैन को उससे ढँक देता है।

जमुना : वीना!... वीना!

दरवाज़े के पास आकर दरवाज़े को धकेलकर खोलती है। श्याम कंधे हिलाकर पास से हट जाता है।

जमुना : क्या बात है, इस तरह दरवाज़ा बंद क्यों कर रखा था? श्याम तो दरवाज़े के आगे ऐसे खड़ा था जैसे अंदर किसी और को रोक रखा हो। क्या बात है, सब लोग इस तरह चुपचाप क्यों हो गए हो?

गोपाल : कु-कुछ नहीं, माँ! तु-तुम अ-आओ आओ। दरवाज़ा खुला ही था। श्याम तो ऐसे ही वहाँ खड़ा था। आओ, बैठो।

जमुना : आज दो घंटे से मेरे कमरे की छत चू रही है। मैंने कितनी बार कहा था कि लिपाई करा दो, नहीं तो बरसात में तकलीफ़ होगी। मगर मेरी बात तो तुम सब लोग सुनी-अनसुनी कर देते हो। कुछ भी कहूँ, बस हाँ माँ, कल करा देंगे माँ, कहकर टाल देते हो। अब देखो चलकर कैसे हर चीज़ भीग रही है! ...क्या बात है, सब लोग गुमसुम क्यों हो गए हो? ...वीना, तू इस वक्त यह चम्मच लिए क्यों खड़ी है? और गोपाल तू वहाँ क्या कर रहा है कोने में?

गोपाल : कु-कुछ नहीं, माँ, यह...वह...वह वहाँ पर...क्या नाम है उसका... वह...वह...वीना का हाथ ज़रा जल गया था। मैं इसके लिए मरहम ढूँढ़ रहा था।

जमुना : हाथ जल गया, कैसे? मैं देखूँ तो।

पास जाकर वीना के दोनों हाथ पकड़कर देखती है।

वीना : नहीं माँजी, ऐसा कुछ नहीं जला है। ये तो बस यूँ ही...यूँ ही चिंता करने लगते हैं। बस ज़रा-सा ही था। हाथ से मल दिया, ठीक हो गया।

गोपाल : हाँ, वैसे तो बिलकुल ठीक हो गया। मगर मैंने कहा कि मरहम मिल जाए तो फिर भी लगा दूँ। कभी वक्त पर पता नहीं चलता और बाद में तकलीफ़ बढ़ जाती है। कहते हैं कि प्रिवेंशन इज़ बैटर दैन क्योर, मतलब कि बाद में इलाज करने से पहले एहतियात बरतना ज़्यादा अच्छा है। इसलिए मैंने सोचा कि एहतियात के तौर पर थोड़ी मरहम लगा दूँ।

जमुना : मगर इसका हाथ जला कैसे? इस वक्त यह ऐसा क्या काम कर रही थी?

गोपाल : कुछ नहीं, कुछ नहीं। कर कुछ नहीं रही थी। श्याम ने कहा था ज़रा चाय बना दो तो उसके लिए चाय बना रही थी। यूँ चाय बनाने में हाथ

जलना नहीं चाहिए, मगर बाज़ वक्त होता है। जलना था, सो जल गया। वैसे चिंता की कोई बात नहीं। मैं अभी मरहम लगा देता हूँ। और मरहम नहीं भी मिलता तो कोई बात नहीं। अपने आप ठीक हो जाएगा। बिलकुल मामूली-सा भी क्या, यही समझो कि जला ही नहीं है। अब तो महसूस भी नहीं होता होगा। क्यों वीना?

वीना : जी हाँ, बिलकुल महसूस नहीं होता।

गोपाल : और क्या? महसूस होने की कोई बात नहीं थी। तुम नाहक फ़िक्र कर रही हो अम्माँ, फ़िक्र करने की कोई बात ही नहीं है। तुम खुद देख रही हो, हाथ बिलकुल ठीक हो गया है।

जमुना : मैं पहले ही कह रही थी कि यह मरदूद बिजली का चूल्हा घर में न लाओ। मगर माँ की बात किसी के कान में जाती हो तो न! यह मरदूद हाथ नहीं जलाएगा, तो करंट मारेगा, करंट नहीं मारेगा तो हाथ जलाएगा। हमारे ज़माने में किसी ने ऐसी चीज़ों का नाम भी नहीं सुना था...यह इसके ऊपर क्या रखा है?

गोपाल : यह स्टोव के ऊपर? यह...यह...अम्माँ फ़्राइंग पैन है...फ़्राइंग पैन... मतलब तलने की वह...क्या कहते है, वह...।

जमुना : तलने की क्या? क्या बहू यहाँ अलग से तुम्हें चीज़ें तल-तलकर खिलाती है? लगता है इसमें कोई चीज़ बनाकर रखी है। **(पास जाती हुई)** मैं भी तो देखूँ कि नयी बहू क्या-क्या बनाकर खिलाती है।

फ़्राइंग पैन से प्लेट उठाने लगती है। गोपाल जाकर उसे बीच में ही रोक देता है।

गोपाल : न न न न न अम्माँ, इसे हाथ मत लगाना, हाथ मत लगाना। तु-तुम आप ही कह रही थीं कि यह हाथ नहीं जलाएगा तो करंट मारेगा, और करंट नहीं मारेगा तो हाथ जलाएगा। ऐसी मरदूद चीज़ का कुछ पता थोड़े ही है, अम्माँ! मैं तो पछता रहा हूँ कि क्यों इसे घर में ले आया। वह वापस ले ले तो मैं अभी जाकर इसे वापस कर दूँ। मुझे पता थोड़े ही था कि इसकी वजह से...

श्याम इस बीच चारपाई से चंद्रकांता उठाकर उसके पन्ने पलटने लगता है। एक बार राधा की ओर देखकर वह थोड़ा खँखारता है। राधा गंभीर मुद्रा बनाए बैठी रहती है।

जमुना : मगर यह तो बुझा हुआ है। यह बुझा हुआ भी करंट मारता है क्या?

गोपाल : हाँ अम्माँ, कभी-कभी यह बुझा हुआ भी करंट मार देता है। इसका कोई भरोसा थोड़े ही है? ऐसी चीज़ से दूर ही रहा जाए तो अच्छा है। कहीं तुम्हारा भी हाथ जल-जला गया तो मुसीबत होगी।

जमुना : अच्छा नहीं हाथ लगाती। मगर बता तो सही कि इस पर छोटी बहू तेरे लिए बनाती क्या-क्या है। इस वक्त भी तो कुछ बना रखा है।

गोपाल : कुछ नहीं अम्माँ, इसमें कुछ खास चीज़ नहीं है। यह श्याम ज़रा कह रहा था, तो उसके लिए...

श्याम : (**सहसा चौंककर जैसे सफ़ाई देता हुआ**) भैया, मैंने कहाँ कहा था? वह तो खुद भाभी का ही खयाल था। क्यों भाभी?

वीना : हाँ, हाँ, मैं कब कहती हूँ कि मैंने नहीं कहा था? ठीक है, मैंने ही तुमसे कहा था...!

राधा सहसा उठकर पास आ जाती है।

राधा : वीना ने भी नहीं, बल्कि हमने कहा था...!

गोपाल : (**जैसे आसमान से गिरकर**) भाभी!

राधा : हाँ, हाँ, ठीक बात तो हैं हमीं ने वीना से ज़ोर देकर कहा था कि पुलटिस बनाकर श्याम के बाँध दो। इसे अपने तनबदन की होश तो रहती नहीं। क्रिकेट खेलने में कहीं टखने पर गेंद लग गई है। दो दिन से कह रहा है कि चलने में ज़ोर पड़ता है। हमने कहा कि ठंड का दिन है, कहीं दर्द बढ़-बढ़ा गया तो बैठकर दो दिन हमीं से मालिश करवाते रहेंगे। वीना ने पुलटिस बना दिया है। अभी बाँध देंगे तो रात तक ठीक हो जाएगा।

गोपाल कृतज्ञता के भाव से राधा की तरफ़ देखता है।

गोपाल : यही तो मैं कह रहा था। यह लड़का अपनी सेहत का ज़रा खयाल नहीं रखता। बाद में जब ज़्यादा बिगाड़ हो जाता है तो मुसीबत घर वालों

की होती है। **(श्याम को आँख से इशारा करके)** अब पुलटिस बँधवाकर चुपके से लेट रहना। समझे?

जमुना : लाओ मैं ही पुलटिस बाँध देती हूँ। कोई पुराना कपड़ा-वपड़ा हो तो दो! ...कहीं कोई नयी धोती न फाड़ देना। यह देखो, नए कपड़ों का क्या हाल कर रखा है? यह रेशमी जंपर मेज़ पर क्यों डाल रखा है? यह मेज़ साफ़ करने के लिए है?

मेज़ से जंपर उठाना चाहती है। मगर गोपाल फिर बीच में आकर रोक देता है।

गोपाल : रहने दो, रहने दो अम्माँ, क्या गज़ब करती हो? ये काम तुम्हारे करने के हैं जो तुम कर रही हो? मैला कपड़ा है, खूँटी से मेज़ पर गिर गया होगा। अभी वीना उठाकर रख देगी।

जमुना : यह मैला कपड़ा है? और वहाँ उतनी दूर खूँटी से कूदकर यहाँ मेज़ पर आ गया? तुम लोगों के लच्छन ज़रा भी मेरी समझ में नहीं आते। नया जंपर है, अभी दो बार भी नहीं पहना होगा, और इस तरह यहाँ गिरा रखा है। हटो, तुम लोग घर उजाड़ने पर तुले हो, तो मुझे तो घर की चिंता है। इतने कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, इनमें टिड्डियाँ लग जाएँगी तो?

फिर जंपर उठाने लगती है, मगर गोपाल उसे कंधे से पकड़कर पलंग की तरफ़ ले चलता है।

गोपाल : अम्माँ, नहीं लगेंगी टिड्डियाँ। तुम तो खामखाह चिंता करती हो यहाँ पलंग पर बैठो और थोड़ी देर आराम करो। बैठो, बैठो...यह इस तरफ़...!

उसे दोनों कंधों से पकड़कर पलंग पर बिठा देता है।

जमुना : हाँ, हाँ, बैठकर आराम करूँ और मेरी जगह काम कोई दूसरा करेगा। घर में करने को इतने काम पड़े हैं। इसे पुलटिस बाँध दूँ तो जाऊँ। दूसरों की मुसीबत कर देता है और आप किताबें पढ़ता रहता है। ...ला, मुझे दे यह किताब और यहाँ आकर लेट जा।

उठकर श्याम के हाथ से किताब ले लेती है।
यह कौन सी किताब है?

श्याम : यह किताब? ...यह अम्माँ...यह मेरे कोर्स की...मतलब मेरे कोर्स की किताब नहीं है यह...शायद यह भाभी की किताब है...

वीना : यह जीजी की गुटका रामायण है, माँजी! जीजी पढ़ती-पढ़ती यहाँ ले आई थीं।

श्याम : हाँ, हाँ, हाँ! भाभी की गुटका रामायण ही तो है। मैं कह रहा था कि लगती तो गुटका रामायण जैसी ही है।

जमुना : मगर गुटका रामायण तो बहुत छोटी होती है। यह तो इतनी बड़ी किताब है।

श्याम : हाँ अम्माँ, पहले यह छोटी थी, अब यह...मेरा मतलब है अम्माँ कि इसका पहला एडीशन छोटा था, मगर जो नया एडीशन आया है, वह पहले से बड़ा है। इनके साइज़ बदलते रहते हैं, यह कोई खास बात नहीं है! चलो अम्माँ, तुम्हें बहुत काम है, मैं तुम्हें तुम्हारे कमरे में पहुँचा दूँ, गैलरी में अँधेरा है, कहीं पैर उलटा-सीधा पड़ गया तो और मुसीबत होगी।

चलने को तैयार हो जाता है।

जमुना : पाँव मेरा उलटा पड़ेगा या तेरा जिसे चोट लगी है? मैं कह रही हूँ लेट जा, और वह मुझे कमरे में छोड़ने जाएगा।

श्याम : अरे हाँ! मेरे तो पाँव में चोट लगी है मैं यह बात भूल ही गया था। मैं भाभी से पुलटिस बँधवाता हूँ। गोपाल भैया तुम्हें छोड़ आते हैं।

गोपाल : हाँ, अम्माँ, चलो मैं छोड़ आता हूँ।

जमुना : मगर मैं कहती थी कि मैं इसे पुलटिस बाँध देती...

गोपाल : उसकी तुम चिंता न करो, अम्माँ। वीना बहुत अच्छी तरह बाँध देगी। आओ, मेरा हाथ पकड़कर साथ-साथ आ जाओ। गैलरी में वाकई बहुत अँधेरा है।

बाँह पकड़कर उसे साथ ले चलता है। उसके बाहर निकलते ही श्याम फ्राइंग पैन पर झपट पड़ता है।

श्याम : भाभी, मैं ज़रा जल्दी से यह पुलटिस निगल लूँ। अगर बड़े भैया भी आ गए तो कहीं सचमुच ही इसे टखने पर न बँधवाना पड़े।

वीना : ठहरो, ज़रा सब्र से काम लो, उन्हें भी आ जाने दो।

श्याम : गलत बात है।

चम्मच भर-भरकर हलुआ मुँह में डालने लगता है।

भाभी, सच कहता हूँ कि बगैर किशमिश के भी इतना मज़ेदार बना है, इतना मज़ेदार बना है कि जितनी तारीफ़ करूँ थोड़ी है।

गोपाल घबराया-सा जल्दी-जल्दी आता है।

गोपाल : इस पुलटिस को जल्दी से इधर-उधर करो, भैया आ रहे हैं।

श्याम : पुलटिस की तो आप ज़रा चिंता न करें। इसे तो मैं अभी साफ़ किए देता हूँ, आप छिलकों के इंतज़ाम की सोचें।

जल्दी-जल्दी खाता है। गोपाल जंपर उठाकर वीना को देता है।

गोपाल : इस जंपर को उधर रखो और ये छिलके...इन्हें तुम जल्दी से मेरे किसी मोज़े में डाल दो।

वीना : मगर आपके सब मोज़े तो पहले ही पुराने छिलकों से भरे हुए हैं।

गोपाल छिलके मेज़ से उठा लेता है और उन्हें हाथों में लिए हुए असमंजस में इधर-उधर देखता है।

गोपाल : तो और किस चीज़ में डाल दें? मेरा टोप ही ले आओ, या जल्दी से मेरे कोट की जेब में भर दो।

सहसा माधव गैलरी से अंदर आ जाता है।

माधव : क्यों भाई, क्या भर रहे हो कोट की जेबों में? कोई मेरे न देखने की चीज़ तो नहीं?

गोपाल : (**हताश भाव से**) आइए, आइए भैया। आ जाइए, आ जाइए। मैं यूँ ही ज़रा इन लोगों से मज़ाक कर रहा था।

माधव : मज़ाक कर रहे थे कि छिलके तुम्हारी जेब में छिपा दिए जाएँ।

हँसता हुआ स्टोव की तरफ़ जाता है।

गोपाल : जी हाँ...जी नहीं...मज़ाक नहीं...मेरा मतलब यह है कि...

माधव : तुम्हारा मतलब मैं समझता हूँ। और तुम क्या खाकर मुँह पोंछ रहे हो श्याम बाबू?

श्याम : मैं? मैं भैया...यह मेरे लिए...मेरे लिए भाभी ने पुलटिस बनाई थी...

माधव : पुलटिस बनाई थी? और तुम वह पुलटिस गले से नीचे उतार गए! (**हँसकर**) खूब! तो आजकल पुलटिस खाने के काम भी आने लगी। भला यह तो बताओ कि किस चीज़ की पुलटिस थी? जिस चीज़ के यह छिलके हैं, उसी की या...?

श्याम बिलकुल घबरा जाता है।

श्याम : भैया, थी तो यह पुलटिस ही, मगर जल्दी में मैंने...मेरा मतलब है कि मैंने जल्दी में...

माधव : तुमने जल्दी में सोचा कि इसे खा डाला जाए! (**फिर हँसकर**) बहुत अच्छा किया। बनी हुई चीज़ का कोई तो इस्तेमाल होना ही चाहिए। और तुम गोपाल, तुम ये छिलके जेब में क्यों भरते हो? बाहर जाकर इन्हें नाली में डाल दो। आगे से डिब्बे में भरकर बाहर ले जाने की ज़रूरत नहीं...

गोपाल : मगर भैया...!

माधव : भैया, सब जानते हैं, राजा! वे यह भी जानते हैं कि तुम्हारे बाएँ हाथ की उँगलियाँ किस तरह पीली हुई हैं। यह भी जानते हैं कि श्याम बाबू का दूध कमरे में क्यों जाता है। और यह भी जानते हैं कि उनके सो जाने पर उनकी बीवी मोमबत्ती जलाकर कौन सी किताब पढ़ा करती है।

सबके मुँह से आश्चर्य से तरह-तरह के शब्द निकलते हैं। माधव हँसता रहता है।

गोपाल : भैया, अब आप से क्या छिपाना है, आप तो सबकुछ जानते हैं। मगर देखिए, अम्माँ से नहीं कहिएगा। अम्माँ को पता चल गया तो बस किसी की खैर नहीं!

माधव : अम्माँ से न कहूँ? (**हँसकर**) तुम समझते हो कि अम्माँ यह सब नहीं जानतीं?

श्याम और गोपाल : ऐं? अम्माँ भी जानती हैं?

माधव : क्यों नही जानतीं? अम्माँ तो शायद मेरी वे बातें भी जानती हैं जो मैं समझता हूँ कि वे नहीं जानतीं। (**हँसकर**) आज से छिलके नाली में डाल दिया करो, इनके लिए डिब्बा रखने की ज़रूरत नहीं। ...और जहाँ तक अम्माँ का सवाल है, अम्माँ इन्हें नाली में पड़े हुए भी नहीं देखेंगी।

हलकी-हलकी हँसी हँसता रहता है।

प्रश्न-अभ्यास

1. "पराया घर तो लगता ही है, भाभी" अपनी भाभी-भाई के कमरे में श्याम को पराएपन का अहसास क्यों होता है?
2. एकांकी में अम्माँ की जो तसवीर उभरती है, अंत में वह बिलकुल बदल जाती है—टिप्पणी कीजिए।
3. अंडे खाना, 'चंद्रकांता संतति' पढ़ना आदि किन्हीं संदर्भों में गलत नहीं है, फिर भी नाटक के पात्र इन्हें छिपकर करते हैं। क्यों? आप उनकी जगह होते तो क्या करते?
4. राधा के चरित्र की ऐसी कौन सी विशेषताएँ हैं जिन्हें आप अपनाना चाहेंगे?
5. (क) सरकार की धूम्रपान न करने की वैधानिक चेतावनी और बड़े-बुज़ुर्गों की धूम्रपान की मनाही के पीछे कौन से कारण हैं?

   (ख) यदि आप अपने घनिष्ठ मित्र को चोरी-छिपे सिगरेट पीते देखें, तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी?

शब्दार्थ और टिप्पणी

पुलटिस	– हलवे की तरह पकाई हुई एक घरेलू दवा जो घाव पर बाँधी जाती है।
कृतज्ञता	– आभार
लच्छन	– लक्षण
टिड्डियाँ	– पंखों वाले लाल रंग के कीड़े जो दल बनाकर चलते हैं और फसल को हानि पहुँचाते हैं।
खामखाह	– बिना कारण, बेवजह
मरदूद	– निकम्मा
एहतियात	– बचाव, होशियारी
करतूत	– काम, करनी
महरी	– घर का काम करने वाली स्त्री
हील-हुज़्ज़त	– कोशिश
दस्तूर	– रीति, तरीका
तिलिस्म	– जादू, इंद्रजाल
संझा	– संध्या
झाँसा	– धोखा
बाँच	– पढ़
तलब	– इच्छा, माँग
सौगात	– तोहफ़ा, उपहार
इश्नान	– स्नान

हुसैन की कहानी अपनी ज़बानी

बड़ौदा का बोर्डिंग स्कूल

मकबूल अब लड़का नहीं रहा क्योंकि उसके दादा चल बसे। लड़के के अब्बा ने सोचा क्यों न उसे बड़ौदा के बोर्डिंग स्कूल में दाखिल करा दिया जाए, वरना दिनभर अपने दादा के कमरे में बंद रहता है। सोता भी है तो दादा के बिस्तर पर और वही भूरी अचकन ओढ़े, जैसे दादा की बगल में सिमटकर सोया हो। घर में न किसी से बात न चीत, बस गुमसुम।

अब्बा ने फ़ौरन मकबूल को चाचा के हवाले किया और हुकुम दिया कि "इसे बड़ौदा छोड़ आओ, वहाँ लड़कों के साथ इसका दिल लग जाएगा। पढ़ाई के साथ मज़हबी तालीम, रोज़ा, नमाज़, अच्छे आचरण के चालीस सबक, पाकीज़गी के बारह तरीके सीख जाएगा।"

महाराजा सियाजीराव गायकवाड़ का साफ़-सुथरा शहर बड़ौदा। राजा मराठा प्रजा गुजराती। शहर में दाखिल होने पर 'हिज़ हाइनेस' की पाँच धातुओं से बनी मूर्ति, शानदार घोड़े पर सवार। 'दौलते बरतानिया' के मेडेल लटकाए, सीना ताने दूर से ही दिखाई देती है।

दारुलतुलबा (छात्रावास) मदरसा हुसामिया, सिंह बाई माता रोड, गैडी गेट। तालाब किनारे सुलेमानी जमात का बोर्डिंग स्कूल। गुजरात की मशहूर 'अरके तिहाल' की ख्याति वाले जी.एम. हकीम अब्बास तैयबजी की देख-रेख में, जो नेशनल कांग्रेस और गांधी जी के अनुयायी, इसीलिए छात्रों के मुँड़े सिरों पर गांधी टोपी और बदन पर खादी का कुरता-पायजामा।

मौलवी अकबर धार्मिक विद्वान, कुरान और उर्दू साहित्य के उस्ताद। केशवलाल गुजराती ज़बान के क्लास टीचर। स्काउट मास्टर, मेजर अब्दुल्ला पठान। गुलज़मा खान बैंड मास्टर। बावर्ची गुलाम की रोटियाँ और बीवी नरगिस का सालन गोश्त।

मकबूल को इसी बोर्डिंग के अहाते में छोड़ा जाता है। यहाँ उसकी दोस्ती छह लड़कों से होती है, जो एक दूसरे के करीब हो जाते हैं। दो साल की नज़दीकी

तमाम उम्र कभी दिल की दूरी में बदल नहीं पाई। हालाँकि हर एक अलग-अलग दिशाओं में बँटे, छः हीले और बहाने हुए। एक डभोई का अत्तर व्यापारी बना तो दूसरा सियाजी रेडियो की आवाज़। एक बना कराची का नागरिक, तो दूसरा मोती की तलाश में कुवैत पहुँचा। एक पहुँचा बंबई और अपना कोट-पतलून और पीली धारी की टाई उतार फेंकी, अबा-कबा पहन मस्जिद का मेंबर बना। एक उड़ने वाले घोड़े पर, पैर रकाब में डाले बना कलाकार और दुनिया की लंबाई-चौड़ाई में चक्कर मार रहा है।

यह पाँच दोस्त-

मोहम्मद इब्राहीम गोहर अली-डभोई के अत्तार, छोटा कद ठहरी हुई नज़रें। अंबर और मुश्क के अत्तर में डूबे, गुणों के भंडार। डाक्टर मनव्वरी का लड़का अरशद-हमेशा हँसता चेहरा। गाने और खाने का शौकीन। भरा लेकिन कसा पहलवानी जिस्म।

हामिद कंबर हुसैन-शौक, कुश्ती और दंड-बैठक, खुश-मिज़ाज, गप्पी, बात में बात मिलाने में उस्ताद।

चौथा दोस्त अब्बासजी अहमद-गठा जिस्म, खुला रंग, कुछ-कुछ जापानी खिंची सी आँखें, स्वभाव से बिज़नेसमैन, हँसने का अंदाज़ दिलकश।

पाँचवा अब्बास अली फ़िदा-बहुत नरम लहज़ा, चेहरे पर ऊँचा माथा, वक्त का पाबंद, खामोश तबियत, हाथों से किताब शायद ही कभी छूटी हो।

मदरसे का सालाना जलसा, मुगलवाड़े के मशहूर फ़ोटोग्राफ़र लुकमानी ट्राइपॉड पर रखे कैमरे पर काला कपड़ा ढँके जैसे उसके अंदर घुसे जा रहे हों। सिर्फ़ खास मेहमानों और उस्तादों का 'ग्रुप फ़ोटोग्राफ़' खींचा जा रहा है। दूर लड़कों की भीड़ में खड़ा मकबूल मौके की तलाश में है। जैसे ही लुकमानी ने फ़ोकस जमाया और कहा 'रेडी' मकबूल दौड़कर ग्रुप के कोने में खड़ा हो गया। इस तरह उस्तादों की बिना इजाज़त उसने अपनी कई तसवीरें खिंचवाईं।

मकबूल ने खेल-कूद में हिस्सा लिया, हाई जंप में पहला इनाम, दौड़ में फिसड्डी। जब ड्रॉइंग मास्टर मोहम्मद अतहर ने ब्लैकबोर्ड पर सफ़ेद चॉक से एक

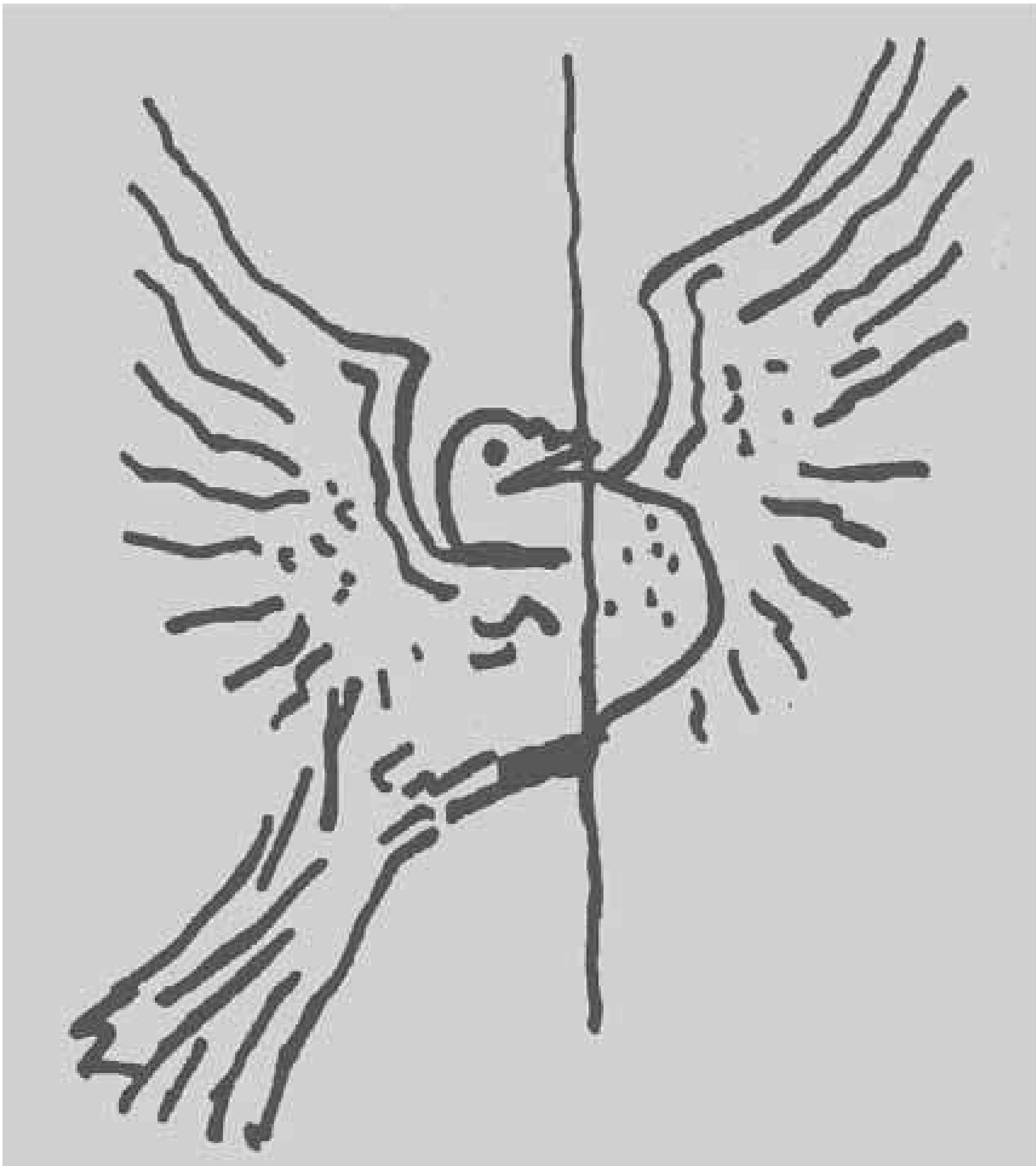

बहुत बड़ी चिड़िया बनाई और लड़कों से कहा–"अपनी-अपनी स्लेट पर उसकी नकल करो," तो मकबूल की स्लेट पर हूबहू वही चिड़िया ब्लैकबोर्ड से उड़कर आ बैठी। दस में से दस नंबर!

दो अक्तूबर, स्कूल गांधी जी की सालगिरह मना रहा है। क्लास शुरू होने से पहले मकबूल गांधी जी का पोर्ट्रेट ब्लैकबोर्ड पर बना चुका है। अब्बास तैयबजी

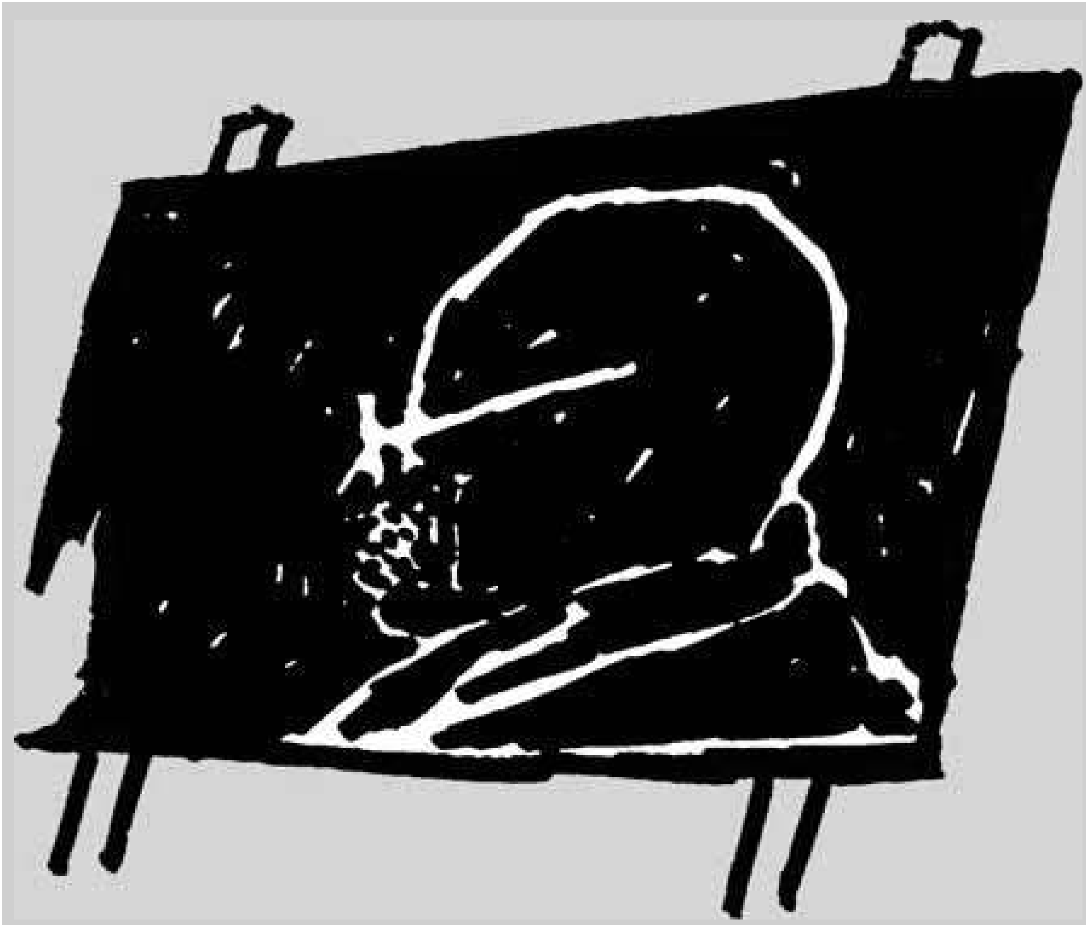

देखकर बहुत खुश हुए। मदरसे के जलसे पर मौलवी अकबर ने मकबूल को 'इलम' (ज्ञान) पर दस मिनट का भाषण याद कराया, बाकायदा अभिनय के साथ, उसमें एक फ़ारसी का शेर था–

'कस्बे कमाल कुन कि अज़ीज़त जहाँ शवी।
कस बेकमाल नियारज़द अज़ीज़े मन।'

जिसने हुनर में कमाल हासिल किया, वह सारी दुनिया का चहेता, जिसके पास कोई हुनर का कमाल नहीं, वह कभी दिलों को जीत नहीं सकता।

किसे मालूम, यह कस्बे कमाल हुनर का कमाल सारी दुनिया में फैलेगा!

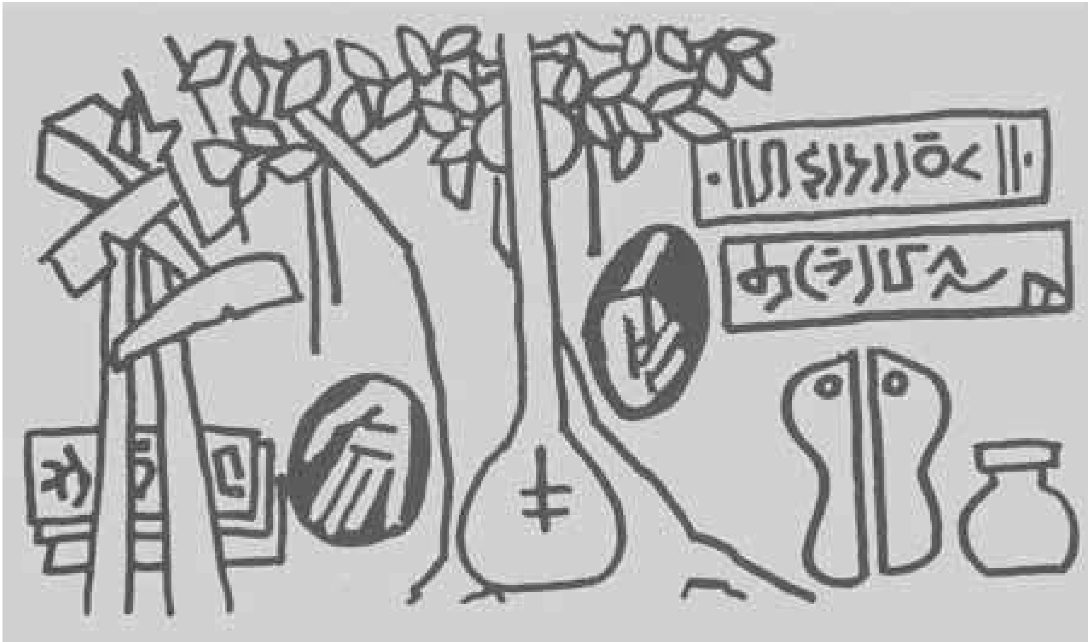

रानीपुर बाज़ार

रानीपुर बाज़ार में चाचा मुरादअली को उनके बड़े भाई फ़िदा ने एक जनरल स्टोर की दुकान खुलवा दी। फ़िदा साहब तो सर करीमभाई की 'मालवा टैक्सटाइल' में टाइमकीपर थे ही मगर बिज़नेस में दिलचस्पी रखते। इस विषय पर कई मोटी-मोटी किताबें जमाकर रखी थीं। मकबूल को छुट्टी के दिन दुकान पर बैठने ज़रूर भेजा जाता, ताकि शुरू से बिज़नेस के गुण सीख ले। खुद तो नौकरी के जाल में ऐसे फँसे कि अट्ठाइस साल की 'कैद बामशक्कत' भुगतनी पड़ी।

छोटे भाई मुरादअली से पहलवानी छुड़वाकर दुकानें लगवाईं। जनरल स्टोर न चला तो कपड़े की दुकान, वह भी नहीं चली तो तोपखाना रोड पर आलीशान रेस्तराँ। मकबूल उन दुकानों पर बैठा, मगर उसका सारा ध्यान ड्रॉइंग और पेंटिंग में। न चीज़ों की कीमतें याद, न कपड़ों की पहनाई का पता। हाँ, मुराद चाचा के होटल में घूमती हुई चाय की प्यालियों की गिनती और पहाड़े उसे ज़बानी याद रहते। गल्ले का हिसाब-किताब सही। शाम को हिसाब में दस रुपये लिखे तो किताब में बीस स्केच किए।

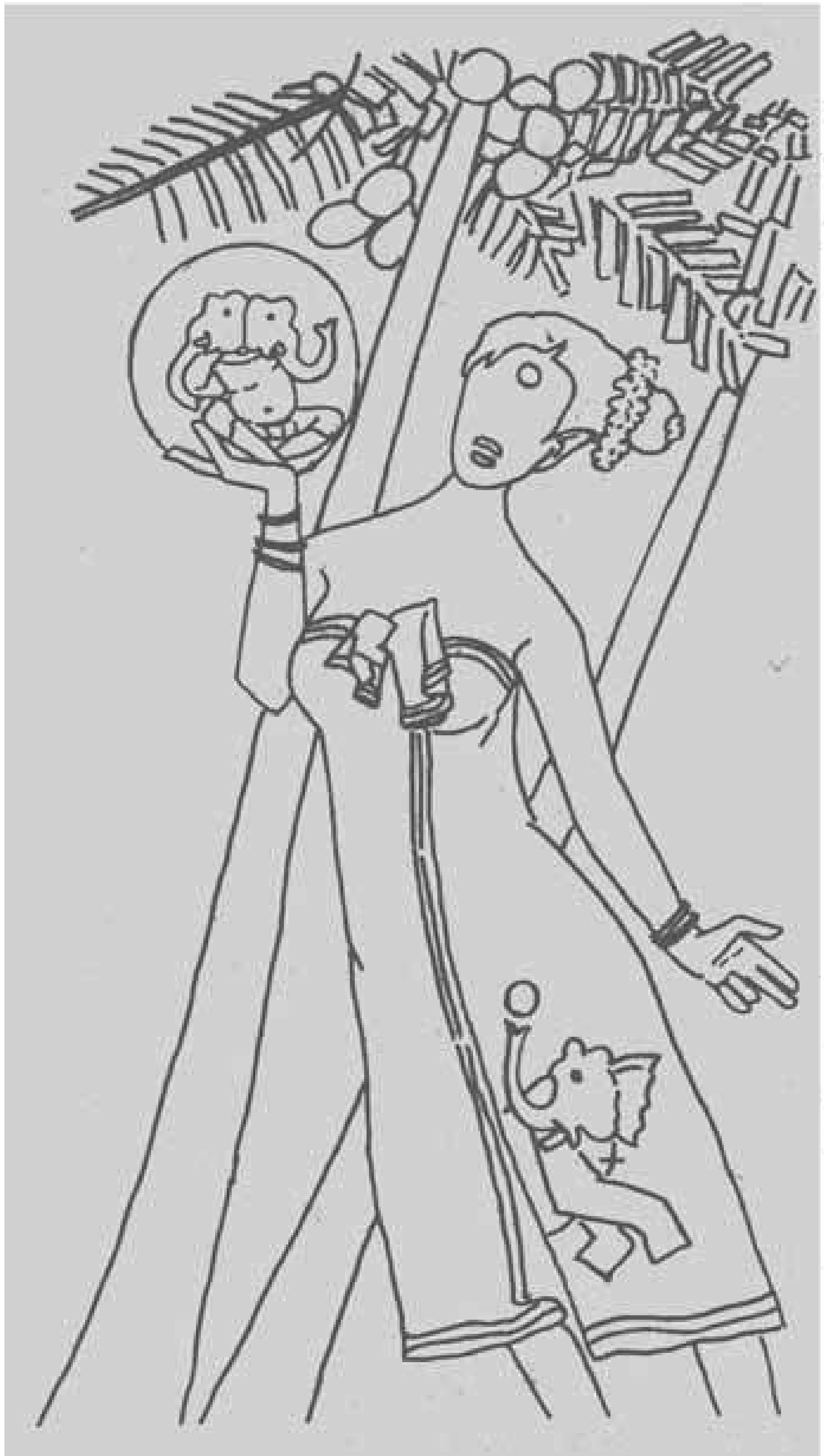

जनरल स्टोर के सामने से अकसर घूँघट ताने गुज़रने वाली एक मेहतरानी का स्केच, गेहूँ की बोरी उठाए मज़दूर की पेंचवाली पगड़ी का स्केच, पठान की दाढ़ी और माथे पर सिज़दे के निशान, बुरका पहने औरत और बकरी का बच्चा। अकसर मेहतरानी कपड़े धोने के साबुन की टिकिया लेने आया करती। चाचा को देखकर घूँघट के पट खुल जाते और अकसर मकबूल की नाक पकड़कर खिलखिला उठती। मकबूल ने उसके कई स्केच बनाए। एक स्केच उसके हाथ लग गया जिसे उसने फ़ौरन अपनी चोली में डाल लिया। मकबूल ने पेपरमिंट की गोली हाथ में थमाई और स्केच निकलवाया।

एक दिन दुकान के सामने से फ़िल्मी इश्तिहार का ताँगा गुज़रा। (साइलेंट फ़िल्मों के ज़माने में शहर में चल रही फ़िल्म का इश्तिहार ताँगे में ब्रास बैंड के साथ शहर के गली-कूचों से गुज़रता। फ़िल्मी इश्तिहार रंगीन पतंग के कागज़ पर हीरो-हीरोइन की तसवीरों के साथ छपे, बाँटे जाते।) कोल्हापुर के शांताराम की फ़िल्म 'सिंहगढ़' का पोस्टर, रंगीन पतंग के कागज़ पर छपा, मराठा योद्धा, हाथ में खिंची तलवार और ढाल। मकबूल का जी चाहा कि उसकी ऑयल पेंटिंग बनाई जाए। आज तक ऑयल कलर इस्तेमाल ही नहीं किया था। वही रंगीन चॉक या वॉटर कलर। अब्बा तो बेटे को बिज़नेसमैन बनाने के सपने देख रहे थे,

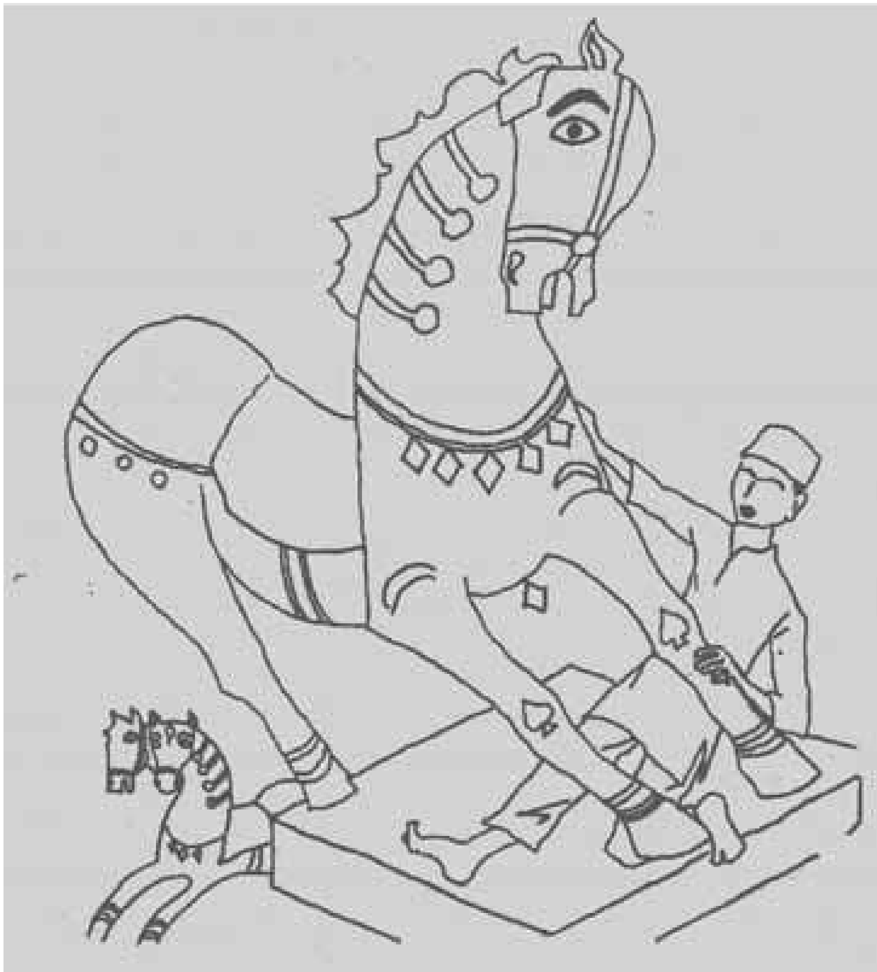

रंग-रोगन क्यों दिलाते! मगर इस पोस्टर ने मकबूल को इस कदर भड़काया कि वह गया सीधा अलीहुसैन रंगवाले की दुकान पर और अपनी दो स्कूल की किताबें, शायद भूगोल और इतिहास, बेचकर ऑयल कलर की ट्यूबें खरीद डालीं और पहली ऑयल पेंटिंग चाचा की दुकान पर बैठकर बनाई। चाचा बहुत नाराज़, बड़े भाई तक शिकायत पहुँचाई। अब्बा ने पेंटिंग देखी और बेटे को गले लगा लिया।

एक और घटना, जब मकबूल इंदौर सर्राफ़ा बाज़ार के करीब तांबे पीतल की दुकानों की गली में लैंडस्केप बना रहा था, वहाँ बेंद्रे साहब भी ऑनस्पॉट पेंटिंग करते मिले। मकबूल को बेंद्रे साहब की टेकनीक बहुत पसंद आई। 'टिंटेड पेपर'

पर 'गोआश वॉटर कलर'। इस इत्तफ़ाकी मुलाकात के बाद मकबूल अकसर बेंद्रे के साथ 'लैंडस्केप' पेंट करने जाया करता।

1933 में बेंद्रे ने कैनवस पर एक बड़ी पेंटिंग घर में पेंट करना शुरू की, 'वैगबांड' था इस पेंटिंग का नाम। अपने छोटे भाई को एक नौजवान पठान के कपड़े पहनाकर मॉडल बनाया। सिर पर हरा रूमाल बाँधा, कंधे पर कंबल, हाथ में डंडा। 'सूरा' और 'डेगा', यानी फ्रेंच इंप्रेशन की झलक। रॉयल अकादमी का रूखा रियलिज़्म, उस पर एक्सप्रेशनिस्ट ब्रश स्ट्रोक का ढाँचा।

इस पेंटिंग पर बेंद्रे को बंबई आर्ट सोसाइटी ने चाँदी का मेडेल दिया। हिंदुस्तानी माडर्न आर्ट का यह शायद पहला क्रांतिकारी कदम था, हालाँकि इस

कदम में 'जोशो-अज़्म' की सुर्खी कम और जवानी का गुलाबीपन ज़्यादा था। राजा रविवर्मा के पश्चिमी सैकेंड हैंड रियलिज़्म के बाद एक हलकी सी हलचल गगनेंद्रनाथ टैगोर के क्यूबिस्टिक तजुर्बे से शुरू हुई। बात आगे बढ़ी नहीं। बेंद्रे का गुलाबीपन भी कुछ ही अर्से तक तरोताज़ा रहा। बड़ौदा पहुँचकर वह 'फैकल्टी ऑफ़ फ़ाइन आर्ट' के हर दिल अज़ीज़ डीन बन गए।

मकबूल की पेंटिंग की शुरुआत और इंदौर जैसी जगह, सिवाए बेंद्रे के कोई नहीं। वह उनके पास जाता रहा और एक दिन उन्हें अपने घर ले आया।

अब्बा से मिलाया। बेंद्रे ने मकबूल के काम पर बात की। दूसरे दिन अब्बा ने बंबई से 'विनसर न्यूटन' ऑयल ट्यूब और कैनवस मँगवाने का आर्डर भेज दिया।

अब सोचा जाए तो ताज्जुब होता है कि उस ज़माने के इंदौर जैसे कपड़ा मिल माहौल में, काज़ी और मौलवियों के पड़ोस में एक बाप कैसे अपने बेटे को आर्ट की लाइन इख्तियार करने पर राज़ी हो गया, जबकि यह आर्ट का शगल राजे-महाराजों और अमीरों की अय्याश दीवारों की सिर्फ़ लटकन बना रहा, आधी सदी और ज़रूरत थी कि आर्ट महलों से उतरकर कारखानों की दीवारों तक पहुँचे।

मकबूल के अब्बा की रोशनखयाली न जाने कैसे पचास साल की दूरी नज़र अंदाज़ कर गई और बेंद्रे के मशवरे पर उसने अपने बेटे की तमाम रिवायती बंदिशों को तोड़ फेंका और कहा–"बेटा जाओ, और ज़िंदगी को रंगों से भर दो।"

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक ने अपने पाँच मित्रों के जो शब्द-चित्र प्रस्तुत किए हैं, उनसे उनके अलग-अलग व्यक्तित्व की झलक मिलती है। फिर भी वे घनिष्ठ मित्र हैं, कैसे?
2. आप इस बात को कैसे कह सकते हैं कि लेखक का अपने दादा से विशेष लगाव रहा?
3. 'लेखक जन्मजात कलाकार है।'–इस आत्मकथा में सबसे पहले यह कहाँ उद्‌घाटित होता है?
4. दुकान पर बैठे-बैठे भी मकबूल के भीतर का कलाकार उसके किन कार्यकलापों से अभिव्यक्त होता है?
5. प्रचार-प्रसार के पुराने तरीकों और वर्तमान तरीकों में क्या फ़र्क आया है? पाठ के आधार पर बताएँ।
6. कला के प्रति लोगों का नज़रिया पहले कैसा था? उसमें अब क्या बदलाव आया है?
7. इस पाठ में मकबूल के पिता के व्यक्तित्व की कौन-कौन सी बातें उभरकर आई हैं?

शब्दार्थ और टिप्पणी

मज़हबी	–	धर्म विशेष से संबंध रखने वाली / वाला
पाकीज़गी	–	शुद्धता, पवित्रता
अरके तिहाल	–	यूनानी दवा का एक नाम
सालन	–	शोरबादार तरकारी / रसेदार सब्ज़ी
हीले	–	बहाने, टालमटोल
अत्तर (अतर)	–	सुगंध, इत्र
दिलकश	–	मन को लुभाने वाला, चित्ताकर्षक
पोर्ट्रेट	–	हाथ की बनी तसवीर
मेहतरानी	–	सफ़ाई का काम करने वाली स्त्री
स्केच	–	चित्र
सिजदा	–	माथा टेकना, खुदा के आगे सिर झुकाना
टिंटेड पेपर	–	चित्रकला में प्रयुक्त होने वाला कागज़
रोशन खयाली	–	आज़ाद खयाली, खुले दिमाग का, अच्छे खयाल रखने वाले
रिवायती	–	पारंपरिक

आवारा मसीहा

दिशाहारा

किसी कारण स्कूल की आधी छुट्टी हो गई थी। घर लौटकर गांगुलियों के नवासे शरत् ने अपने मामा सुरेंद्र से कहा, "चलो पुराने बाग में घूम आएँ।"

उस समय खूब गरमी पड़ रही थी, फूल-फल का कहीं पता नहीं था। लेकिन घनी छाया के नीचे निस्तब्धता में समय काटना बहुत अच्छा लगता था। वह अब यहाँ से चला जाएगा, इस बात से शरत् का मन बहुत भारी था। लेकिन कहता वह किसी से नहीं था। चुपचाप सुरेंद्र के साथ घर से निकल पड़ा। नाते में मामा और आयु में छोटा होने पर भी दोनों में धीरे-धीरे मित्रता के बंधन गहराते आ रहे थे।

बाग में पहुँचकर पेड़ों के पास घूमते-घूमते वह मानो मन ही मन उनसे विदा लेने लगा। शायद वह सोच रहा था कि अब वापस आना हो या न हो। फिर जैसा कि उसका स्वभाव था, सहसा कूदकर वह एक पेड़ की डाल पर बैठ गया और बातें करने लगा। इन बातों का कोई अंत नहीं था। कोई सूत्र भी नहीं था। विदा के दुख को छिपाने के लिए ही मानो वह कुछ न कुछ कहते रहना चाहता था। बोला, "तू दुखी न हो, हम फिर मिलेंगे और बीच-बीच में तो मैं आता ही रहूँगा।"

"आओगे?"

"क्यों नहीं आऊँगा, भागलपुर क्या मुझे कम अच्छा लगता है? घाट के टूटे स्तूप पर से गंगा में कूदने में कितना मज़ा आता है! उस पार वह जो झाऊ का वन है, उसे क्या भूल सकूँगा! वह मुझे पुकारेगा और मैं चला आऊँगा।"

फिर दीर्घ निःश्वास लेकर बोला, "ओह, कितनी प्यारी जगह है यह भागलपुर, देख लेना मैं अवश्य आऊँगा।"

दो क्षण तक दोनों में से कोई नहीं बोला। फिर सहसा शरत् ने कहा, "पेड़ पर चढ़ना बड़ा ज़रूरी है, मान लो किसी वन में जा रहे हैं, हठात् संध्या का अंधकार फैल गया, चारों ओर से हिंसक पशुओं की आवाज़ें उठने लगीं, तब यदि पेड़ पर चढ़ना न आया तो महाविपद..."

सुरेंद्र ने पूछा, "अगर गिर पड़े तो..."

शरत् ने कहा, "गिरेगा क्यों रे!"

वह और ऊपर चढ़ गया। एक कपड़े से कमर को पेड़ की एक मोटी शाखा से बाँधा और लेट गया। बोला, "इस तरह सोकर रात काटी जा सकती है।"

नाना के घर रहते शरत् को लगभग तीन वर्ष हो गए थे। इससे पहले भी वह माँ के साथ कई बार आ चुका था। सबसे पहली बार उसकी माँ जब उसको लेकर आई थी, तो नाना-नानियों ने उस पर धन और अलंकारों की वर्षा की थी। नाना केदारनाथ ने कमर में सोने की तगड़ी पहनाकर उसे गोद में उठाया था। उस परिवार में इस पीढ़ी का पहला लड़का था वह!

लेकिन तीन वर्ष पहले का यह आना कुछ और ही तरह का था। उसके पिता मोतीलाल यायावर प्रकृति के स्वप्नदर्शी व्यक्ति थे। जीविका का कोई भी धंधा उन्हें कभी बाँधकर नहीं रख सका। चारों ओर से लांछित होकर वह बार-बार कामकाज की तलाश करते थे। नौकरी मिल भी जाती थी तो उनके शिल्पी मन और दासता के बंधन में कोई सामंजस्य न हो पाता। कुछ दिन उसमें मन लगाते, परंतु फिर एक दिन अचानक बड़े साहब से झगड़कर उसे छोड़ बैठते और पढ़ने में व्यस्त हो जाते या कविता करने लगते। कहानी, उपन्यास, नाटक सभी कुछ लिखने का शौक था। चित्रकला में भी रुचि थी।

सौंदर्यबोध भी कम नहीं था। सुंदर कलम में नया निब लगाकर बढ़िया कागज़ पर मोती जैसे अक्षरों में रचना आरंभ करते, परंतु आरंभ जितना महत्त्वपूर्ण होता, अंत होता उतना ही महत्त्वहीन। अंत की अनिवार्यता मानो उन्होंने कभी स्वीकार ही नहीं की। बीच में ही छोड़कर नयी रचना आरंभ कर देते। शायद उनका आदर्श बहुत ऊँचा होता था या शायद अंत तक पहुँचने की क्षमता ही उनमें नहीं थी। वह कभी कोई रचना पूरी नहीं कर सके। एक बार बच्चों के

लिए उन्होंने भारतवर्ष का एक विशाल मानचित्र तैयार करना आरंभ किया, परंतु तभी मन में एक प्रश्न जाग आया, क्या इस मानचित्र में हिमाचल की गरिमा का ठीक-ठीक अंकन हो सकेगा? नहीं हो सकेगा। बस, फिर किसी भी तरह वह काम आगे नहीं बढ़ सका।

इस तरह मोतीलाल की सारी कला-साधना व्यर्थता में ही सफल हुई। परिवार का भरण-पोषण उनके लिए असंभव हो गया। यह देखकर शरत् की माँ भुवनमोहिनी ने पहले तो पति को बहुत-कुछ कहा-सुना, फिर अपने पिता केदारनाथ से याचना की और एक दिन सबको लेकर भागलपुर चली आईं। मोतीलाल एक बार फिर घर-जँवाई होकर रहने लगे।

(2)

भागलपुर आने पर शरत् को दुर्गाचरण एम.ई. स्कूल की छात्रवृत्ति क्लास में भर्ती कर दिया गया। नाना स्कूल के मंत्री थे, इसलिए बालक की शिक्षा-दीक्षा कहाँ तक हुई है, इसकी किसी ने खोज-खबर नहीं ली। अब तक उसने केवल 'बोधोदय' ही पढ़ा था। यहाँ उसे पढ़ना पड़ा 'सीता-वनवास', 'चारु पाठ', 'सद्भाव-सद्गुरु' और 'प्रकांड व्याकरण'। यह केवल पढ़ जाना ही नहीं था, बल्कि स्वयं पंडित जी के सामने खड़े होकर प्रतिदिन परीक्षा देना था। इसलिए यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि बालक शरत् का साहित्य से प्रथम परिचय आँसुओं के माध्यम से हुआ। उस समय वह सोच भी नहीं सकता था कि मनुष्य को दुख पहुँचाने के अलावा भी साहित्य का कोई उद्देश्य हो सकता है, लेकिन शीघ्र ही वह यह अवश्य समझ गया कि वह क्लास में बहुत पीछे है। यह बात वह सह नहीं सकता था, इसलिए उसने परिश्रमपूर्वक पढ़ना आरंभ कर दिया। और देखते-देखते बहुतों को पीछे छोड़कर अच्छे बच्चों में गिना जाने लगा।

नाना लोग कई भाई थे और संयुक्त परिवार में एक साथ रहते थे। इसलिए मामाओं और मौसियों की संख्या काफ़ी थी। उनमें छोटे नाना अघोरनाथ का बेटा मणींद्र उसका सहपाठी था। उन दोनों को घर पढ़ाने के लिए नाना ने अक्षय पंडित को नियुक्त कर दिया था। वे मानो यमराज के सहोदर थे। मानते थे कि विद्या का

निवास गुरु के डंडे में है। इसलिए बीच-बीच में सिंह-गर्जना के साथ-साथ रुदन की करुण-ध्वनि भी सुनाई देती रहती थी।

इस विद्याध्ययन के समय शरारत कम नहीं चलती थी। शरत् यहाँ भी अग्रणी था। उस दिन तेल के दिये के चारों ओर बैठकर सब बच्चे पढ़ रहे थे और बरामदे में निवाड़ के पलंग पर लेटे हुए नाना सुन रहे थे सहसा वे बोल उठे, "क्यों, पुराना पाठ याद कर रहे हो? आज नया पाठ नहीं पढ़ा क्या?"

"नहीं!"

"क्यों?"

"पंडित जी नहीं आए। उन्हें बुखार आ गया है।"

बस नाना ने घर के सेवक मुशाई को पुकारा, "मुशाई, लालटेन जलाओ! पंडित जी को बुखार आ गया है। देखने जाना है।"

वे स्कूल के मंत्री ही नहीं, समाज के नेता भी थे। मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसमें वे आदर्श माने जाते थे। उनके जाते ही शरत् ने घोषणा की, "कैट इज़ आउट, लेट माउस प्ले।"

और तुरंत ही समवेत गान का यह स्वर वहाँ गूँज उठा :

डांस लिटिल बेबी, डांस अप हाई,
नेवर माइंड बेबी, मदर इज़ नाई।
क्रो एंड केपार, केपार एंड क्रो,
देअर लिटिल बेबी, देअर यू गो।
अप-टू दी सीलिंग, अप-टू दी ग्राउंड,
बैकवर्ड एंड फार्वर्ड, राउंड एंड राउंड।
डांस लिटिल बेबी, एंड मदर विल सिंग,
मैरिली-मैरिली, डिंग-डिंग-डिंग।

एक उत्साही बालक ने इस अंतिम पंक्ति का तुरंत हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत कर दिया, "खुशी से, खुशी से, ताक धिनाधिन।"

एक दिन न जाने कहाँ से एक चमगादड़ बच्चों के सिर पर आकर मँडराने लगा। छोटा मामा देवी सोया पड़ा था क्योंकि नाना भी सो गए थे। तब बाकी बच्चों

का पढ़ना कैसे होता? चमगादड़ को देखकर मणि और शरत् के हाथ खुजलाने लगे। लाठियाँ लेकर वे उसे पकड़ने दौड़े। फिर जो युद्ध मचा, उसमें चमगादड़ तो जंगले में से होकर निकल गया, लेकिन लाठी दीवे में जा लगी। चादर पर तेल फैलता हुआ वह बुझकर गिर पड़ा। यह देखकर मणि और शरत् दोनों चुपचाप वहाँ से पलायन कर गए। नाना की आँख खुल गई। देखा घोर अंधकार फैला है। पुकार उठे, "मुशाई, मुशाई!''

मुशाई दौड़ा-दौड़ा आया, "जी!"

"बात्ती कैयूं बुत्त गया?"

दियासलाई जलाकर मुशाई ने देखा कि वहाँ न तो मणि है और न शरत्। केवल देवी गहरी नींद में सोया है। बोला, "मणि और शरत् तो खाना खाने गए हैं। देवी ने बत्ती गिरा दी है।"

इस अपराध की कोई क्षमा नहीं थी। केदारनाथ ने देवी का कान पकड़कर उठाया और मुशाई से कहा, "इसे ले जाकर अस्तबल में बंद कर दो।"

अगले दिन मामा को प्रसन्न करने के लिए गहरी रिश्वत देनी पड़ी। लेकिन देवी पर माँ सरस्वती की कम ही कृपा थी। शरत् के बड़े मामा ठाकुरदास सभी बच्चों की शिक्षा की देखभाल करते थे। वे गांगुली परिवार की कट्टरता और कठोरता के सच्चे प्रतिनिधि थे। उस दिन क्या हुआ, मोतीलाल बच्चों को लेकर गंगा के किनारे घूम रहे थे कि अचानक ठाकुरदास आ निकले। उनकी दृष्टि में यह अक्षम्य अपराध था। उन्होंने बच्चों को तुरंत परीक्षा के लिए प्रस्तुत होने का आदेश दिया। किसी तरह मणि और शरत् तो मुक्ति पा गए, लेकिन देवी ने जगन्नाथ शब्द का संधि-विच्छेद किया, 'जगड़-नाथ'।

इस अपराध का दंड पीठ पर चाबुक खाना ही नहीं था, अस्तबल में बंद होना भी था। परंतु शरत् पर इन बातों का कोई असर नहीं होता था। यहाँ तक कि स्कूल में भी दुष्टता करने से वह नहीं चूकता था। अकसर वहाँ की घड़ी समय से आगे चलने लगती। उसको ठीक करके चलाने का भार वैसे अक्षय पंडित पर था। लेकिन दो घंटे खूब जमकर काम करने के बाद तंबाकू खाने की इच्छा हो आना स्वाभाविक था। तब वे स्कूल के सेवक जगुआ की पानशाला में जा उपस्थित होते।

इसी समय शरत् की प्रेरणा से दूसरे छात्र उस घड़ी को दस मिनट आगे कर देते। कई दिन तक जब उनकी चोरी नहीं पकड़ी गई तो साहस और बढ़ गया। वे घड़ी को आधा घंटा आगे करने लगे। इसके बाद कभी-कभी वह एक घंटा भी आगे हो जाती थी। उस दिन तीन का समय होने पर उसमें चार बजे थे। अभिभावकों के मन में संदेह होने लगा, लेकिन पंडित जी ने उत्तर दिया, "मैं स्वयं घड़ी की देखभाल करता हूँ।"

उत्तर उन्होंने दे दिया, लेकिन शंका उनके भी मन में थी। इसलिए उन्होंने चुपचाप इस रहस्य का पता लगाने का प्रयत्न किया। एक दिन पानशाला से असमय में ही लौट आए, क्या देखते हैं कि बच्चे एक-दूसरे के कंधे पर चढ़कर घड़ी को आगे कर रहे हैं। बस वे गरज उठे। और सब लड़के तो निमिष-मात्र में वहाँ से भाग गए, लेकिन शरत् भले लड़के का अभिनय करता हुआ बैठा रहा। पंडित जी यह कभी नहीं जान सके कि इस सारे नाटक का निदेशक वही है। उसने कहा, "पंडित जी, आपके पैर छूकर कहता हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम। मैं तो मन लगाकर सवाल निकाल रहा था।"

उस समय की उसकी मुख-भंगी देखकर कौन अविश्वास कर सकता था? अपने असीम साहस और सूझ-बूझ के कारण जिस प्रकार वह घर में मामा लोगों के दल का दलपति बन गया था, उसी प्रकार स्कूल के विद्यार्थियों के नेतृत्व का भार भी अनायास ही उसके कंधों पर आ गया।

उसके शौक भी बहुत थे, जैसे पशु-पक्षी पालना और उपवन लगाना। लेकिन उनमें सबसे प्रमुख था तितली-उद्योग। नाना रूप रंग की अनेक तितलियों को उसने काठ के बक्स में रखा था। बड़े यत्न से वह उनकी देखभाल करता था। उनकी रुचि के अनुसार भोजन की व्यवस्था होती थी। उनके युद्ध का प्रदर्शन भी होता था। उसी प्रदर्शन के कारण उसके सभी साथी उसकी सहायता करके अपने को धन्य मानते थे। उनमें न केवल परिवार के या दूसरे बड़े घरों के बालक थे बल्कि घर के नौकरों के बच्चे भी थे। उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। ये बच्चे भी उसे प्रसन्न करके अपने को कृतार्थ अनुभव करते थे।

अपने उपवन में उसने अनेक प्रकार के फूल-गाछ और लता-गुल्म लगाए थे। ऋतु के अनुसार जूही, बेला, चंद्रमल्लिका और गेंदा आदि के फूल खिलते और

दलपति सहित सभी बच्चे गद्गद हो उठते। इस उपवन के बीच में गड्ढा खोदकर एक तलैया का निर्माण भी उसने किया था। उस पर टूटे शीशे का आवरण था। साधारणतया वह उस पर मिट्टी लीप देता, परंतु कोई विशिष्ट व्यक्ति देखने आता तो मिट्टी हटाकर उसे चकित कर देता।

लेकिन ये सब कार्य उसे लुक-छिपकर करने पड़ते थे, क्योंकि नाना लोग इन्हें पसंद नहीं करते थे। उनकी मान्यता थी कि बच्चों को केवल पढ़ने का ही अधिकार है। प्यार, आदर और खेल से उनका जीवन नष्ट हो जाता है। सवेरे स्कूल जाने से पहले घर के बरामदे में उन्हें चिल्ला-चिल्लाकर पढ़ना चाहिए और संध्या को स्कूल से लौटकर रात के भोजन तक चंडी-मंडप में दीवे के चारों ओर बैठकर पाठ का अभ्यास करना चाहिए। यही गुरुजनों की प्रीति पाने का गुर था। जो नियम तोड़ता था उसे आयु के अनुसार दंड दिया जाता था। कोई नहीं जानता था कि न जाने कब किसको घंटों तक एक पैर पर खड़े होकर आँसू बहाने पड़ें। इस अनुशासन के बीच खेलने का अवकाश पाना बड़ा कठिन था, परंतु आँखों में धूल झोंकने की कला में शरत् निष्णात था।

छात्रवृत्ति[1] की परीक्षा पास करने के बाद, जब वह अंग्रेज़ी स्कूल में भर्ती हुआ, तब भी उसकी प्रतिभा में ज़रा भी कमी नहीं हुई। गांगुली परिवार में पतंग उड़ाना वैसे ही वर्जित था जैसे शास्त्र में समुद्र-यात्रा। परंतु शरत् था कि पतंग उड़ाना, लट्टू घुमाना, गोली और गुल्ली-डंडा जैसे निषिद्ध खेल उसे बड़े प्रिय थे। नीले आकाश में नृत्य करती हुई उसकी पतंग को देखकर दल के दूसरे सदस्यों के हृदय नाच उठते। उसका माँझा विश्वजयी था। वह ऐसा पेंच मारता कि विरोधी की पतंग कटकर धरती पर आ गिरती। शून्य में लट्टू घुमाकर उसे हथेली पर ऐसे लपक लेता कि साथी मुग्ध हो रहते।

बाग से फल चुरा लाने की कला में भी वह कम कुशल नहीं था। मालिक लोग संदेह करते, पेड़ पर लगे अमरूदों की गिनती भी वे रखते, लेकिन वे डाल-डाल तो शरत् पात-पात। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि के सामने मालिकों के सब उपाय व्यर्थ हो जाते।

1. सन् 1887 ई.में छात्रवृत्ति स्कूल होते थे, जिनमें अंतिम श्रेणी छठी होती थी। छात्रवृत्ति का अर्थ आज जैसा नहीं था।

यदि कभी पकड़ा भी जाता तो वीरों की तरह दंड ग्रहण करता। कथाशिल्पी शरत्चंद्र के सभी प्रसिद्ध पात्र देवदास, श्रीकांत, दुर्दांतराम और सव्यसाची इस कला में निष्णात हैं। पता नहीं, दुर्दांतराम की तरह उसकी कोई नरायनी भाभी थी या नहीं पर निश्चय ही चोरी की शिकायत आने पर उसकी माँ ने उस कलमुँहे को एक पैर पर खड़ा होने की सज़ा दी होगी और उसने विरोध प्रकट करते हुए भी उसे स्वीकार कर लिया होगा।

वह खिलाड़ी था, विद्रोही भी उसे कह सकते हैं, पर बदमाश वह किसी भी दृष्टि से नहीं था। भले ही तत्कालीन मापदंड के अनुसार उसे यह उपाधि मिली हो। पिता की तरह उसमें भी प्रचुर मात्रा में सौंदर्य-बोध था। पढ़ने के कमरे को खूब सजाकर रखता। चौकी और उस पर एक सुंदर-सी तिपाई, एक बंद डेस्क और उसमें पुस्तकें, कापियाँ, कलम-दवात इत्यादि-इत्यादि। उसकी पुस्तकें झक-झक करती थीं। कापियाँ वह स्वयं करीने से काटकर ऐसे तैयार करता था कि देखते ही बनता था।

स्वभाव से भी वह अपरिग्रही था। दिनभर में वह जितनी गोलियाँ और लट्टू जीतता, संध्या को वह उन सबको छोटे बच्चों में बाँट देता। देने में उसे मानो आनंद आता था, लेकिन यह देने के अभिमान का आनंद नहीं था, यह था भार-मुक्ति का आनंद। नींद और आहार पर भी उसे अधिकार था। बचपन से ही वह स्वल्पाहारी था। बड़े होने पर कथाशिल्पी शरत्चंद्र की 'बड़ी बहू' सबसे अधिक इसीलिए तो परेशान रहती थी।

अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ते समय उसे अपने शरीर का बड़ा ध्यान रहता था। नाना के घर के उत्तर की ओर गंगा के ठीक ऊपर एक बहुत बड़ा और बदनाम घर था। कभी वहाँ एक बहुत बड़ा परिवार रहता था। परंतु संयोग से एक के बाद एक, कई मृत्यु हो जाने पर वे लोग उसे छोड़कर चले गए। उसके बाद बहुत दिनों तक वह भूतावास बना रहा। अभिभावकों से छुपाकर इसी महल के आँगन में शरत् ने कुश्ती लड़ने का अखाड़ा तैयार किया। गोला फेंकने के लिए गंगा के गर्भ से बड़े-बड़े गोल पत्थर आ गए, लेकिन 'पैरेलल बार' की व्यवस्था नहीं हो सकी। पैसे का अभाव जो था। बहुत सोच-विचार कर शरत् ने आदेश दिया, "बाँस की बार तैयार की जाए।"

बस संध्या के झुटपुटे में चार-पाँच लड़के बाँस काटने निकल पड़े। झाड़-झंखाड़ों में रगड़-रगड़कर हाथ-पाँव लहूलुहान हो गए। पर दलपति की आज्ञा है कि उसी रात को 'पैरेलल बार' तैयार हो जानी चाहिए और वह हुई। अगले दिन दोपहर तक सब लड़के उत्फुल्ल होकर उस पर झूलने लगे। लेकिन शोर मचाना वहाँ एकदम मना था। घर के लोग जान न लें, इसलिए लौटते समय वे सब प्राण-रक्षा का मंत्र पढ़ते हुए लौटते थे, लेकिन एक दिन क्या हुआ कि गिर जाने के कारण एक बालक को चोट आ गई। उसके बाद जो कुछ हुआ उसकी कल्पना कर लेना कष्टसाध्य नहीं है।

उसका विश्वास था कि तैरने से शरीर बनता है। गंगा घर के समीप ही थी, लेकिन कभी-कभी रूठकर दूर चली जाती थी। उस वर्ष ऐसा ही हुआ। बीच में छोटे-छोटे ताल बन गए और उनमें लाल-लाल जल भर गया। शरत् उस लाल जल में स्नान करने का लोभ कैसे संवरण कर सकता था! मणि मामा को साथ लेकर एक दिन वह उसमें कूद ही तो पड़ा, लेकिन उसका दुर्भाग्य, उस दिन छोटे नाना अघोरनाथ असमय ही घर लौट आए। उन्होंने मणि को नहीं देखा तो पूछा, "मणि कहाँ है?"

किसी ने बताया, "मणि-शरत् ताल में स्नान करने गए हैं।"

उस क्षण अघोरनाथ ने जो हुँकार किया उसे सुनकर सब डर गए। उनका यह डर अकारण नहीं था, जैसे ही दोनों बालक नहाकर खुशी-खुशी घर लौटे, वैसे ही छोटे नाना सिंह के समान गर्जन करते हुए मणि पर टूट पड़े। घर की नारियों के बार-बार बचाने पर भी उसकी जो दुर्गति हुई उसको ठीक होते-होते पाँच-सात दिन लग गए। लेकिन शरत् उस क्षण के बाद वहाँ नहीं देखा गया। तीसरे दिन जब नाना फिर घोड़े पर सवार होकर काम पर चले गए तभी वह दिखाई दिया। मामा लोगों ने अचरज से पूछा, "तू कहाँ चला गया था रे?"

शरत् ने उत्तर दिया, "मैं गोदाम में था।"

"क्या खाता था?"

"वही जो तुम खाते थे।"

"कौन देता था?"

"छोटी नानी!"

जिस समय छोटे नाना मणि को मार रहे थे, उस समय छोटी नानी के परामर्श से शरत् घर में जा छिपा था।

लेकिन उसे खेलने का जितना शौक था उतना ही पढ़ने का भी था। वह केवल स्कूल की ही पुस्तकें नहीं पढ़ता था, पिता के संग्रहालय में जो भी पुस्तकें उसके हाथ लग जातीं छिपकर उन्हें पढ़ डालता। वहीं से एक दिन उसके हाथ एक ऐसी पुस्तक लगी जिसमें दुनियाभर के विषयों की चर्चा थी। नाम था 'संसार कोश'। विपद पड़ने पर गुरुजनों के दंड से कैसे मुक्ति पाई जाती है इसका भी एक मंत्र उसमें लिखा था। अपने सभी साथियों को उसने यह मंत्र सिखा दिया। मंत्र था, "ओम्, ह्रं, ह्यूं, ह्यूं, रक्षरक्ष स्वाहा।"

केवल गुरुजनों के दंड से मुक्ति पाने का ही नहीं, साँपों को बस में करने का मंत्र भी उसे उसी में मिला था। शरत् उसकी परीक्षा करने को आतुर हो उठा। कुछ दिन पहले उसे साँप ने काट लिया था। बड़ी कठिनता से उसके प्राण बच सके थे। इसीलिए वह जनमेजय की तरह नागयज्ञ करने को और भी उत्सुक था। कोश में लिखा था कि एक हाथ लंबी बेल की जड़ किसी भी विषाक्त साँप के फण के पास रख देने पर पल-भर ही में वह साँप सिर नीचा कर निर्जीव हो जाएगा।

बड़े उत्साह के साथ उसने बेल की जड़ ढूँढ़ निकाली। साँपों की कोई भी कमी नहीं थी। लेकिन उस दिन शायद उन्हें इस मंत्र का पता लग गया था। इसलिए बहुत खोज करने पर भी कोई साँप नहीं दिखाई दिया। अंत में अमरूद के एक पेड़ के नीचे मलबे में एक गोखरू साँप के बच्चे का पता लगा। खुशी से भरकर शरत् अपने दल सहित वहाँ जा पहुँचा और उसे बाहर निकलने को छेड़ने लगा। बालकों के इस अत्याचार से क्षुब्ध होकर साँप के उस बच्चे ने अपना फण उठा लिया। शरत् इसी क्षण की राह देख रहा था, तुरंत आगे बढ़कर बेल की जड़ उसके सामने कर दी। विश्वास था कि अभी वह साँप सिर नीचा करके सबसे क्षमा-प्रार्थना करेगा, लेकिन निस्तेज होना तो दूर वह बच्चा बार-बार उस जड़ को डसने लगा। यह देखकर बालक भयातुर हो उठे। तब मणि मामा कहीं से लाठी लेकर आए और उन्होंने सनातन रीति से उस बाल सर्प का संहार कर डाला।

ऐसा लगता है, तब तक शरत् की भेंट 'विलासी' के 'मृत्युंजय' से नहीं हुई थी। जड़ दिखाने से पूर्व एक काम और भी तो करना होता है, "जिस साँप को जड़ी दिखाकर भगाना हो पहले उसका मुँह गरम लोहे की सींक से कई बार दाग दो, फिर उसे चाहे जड़ी दिखाई जाए, चाहे कोई मामूली-सी सींक, उसे भागकर जान बचाने की ही सूझेगी।" 'श्रीकांत' और 'विलासी' आदि अपनी रचनाओं में कथाशिल्पी शरत्चंद्र ने इस विद्या की अच्छी चर्चा की है।

इन शरारतों के बीच कभी-कभी यह भी देखा जाता कि दलपति गैरहाज़िर है। पुकार उठती, "कहाँ गए शरत् दा?"

"यहीं तो थे।"

"कहाँ थे?"

कुछ पता न लगता परंतु जब खोज-खोजकर सब थक जाते तो न जाने कहाँ से आकर वह स्वयं हाज़िर हो जाता। बच्चे उसे घेर लेते और पूछते, "कहाँ चले गए थे?"

"तपोवन!"

"यह तपोवन कहाँ है, हमें भी दिखाओ।"

उसने किसी को भी तपोवन का पता नहीं बताया, लेकिन सुरेंद्र मामा से उसकी सबसे अधिक पटती थी। शायद इसलिए कि सुरेंद्र ने उसकी माँ का दूध पिया था। वह अभी छोटा ही था कि उसकी माँ के फिर संतान होने की संभावना दिखाई दी। उधर शरत् का छोटा भाई शैशव में ही चल बसा था। तब उसकी माँ ने सुरेंद्र को अपना दूध पिलाकर पाला था। इसलिए बहुत अनुनय-विनय करने पर एक दिन वह उसको साथ लेकर अपने तपोवन गया। जाने से पूर्व उसने सुरेंद्र से कहा, "मैं तुझे वहाँ ले तो चलूँगा, परंतु तू सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके यह प्रतिज्ञा कर कि किसी और को इस स्थान का पता नहीं बताएगा।"

सुरेंद्र बोला, "मैं सूर्य को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि किसी और को इस स्थान का पता नहीं बताऊँगा।"

"मैं गंगा को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि किसी और को इस स्थान का पता नहीं बताऊँगा।"

"मैं हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि किसी और को इस स्थान का पता नहीं बताऊँगा।"

"अब चल!"

घोष परिवार के मकान के उत्तर में गंगा के बिलकुल पास ही एक कमरे के नीचे, नीम और करौंदे के पेड़ों ने उस जगह को घेरकर अंधकार से आच्छन्न कर रखा था। नाना लताओं ने उस स्थान को चारों ओर से ऐसे ढँक लिया था कि मनुष्य का उसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन था। बड़ी सावधानी से एक स्थान की लताओं को हटाकर शरत् उसके भीतर गया। वहाँ थोड़ी-सी साफ़-सुथरी जगह थी। हरी-भरी लताओं के भीतर से सूर्य की उज्ज्वल किरणें छन-छनकर आ रही थीं और उनके कारण स्निग्ध हरित प्रकाश फैल गया था। देखकर आँखें जुड़ाने लगीं और मन गद्‌गद होकर मानो किसी स्वप्नलोक में पहुँच गया। एक बड़ा-सा पत्थर वहाँ रखा था। उसके ऊपर बैठकर शरत् ने सुरेंद्र को बुलाया, "आ!"

सुरेंद्र डरते-डरते पास जा बैठा। नीचे खरस्रोता गंगा बह रही थी। दूर उस पार का दृश्य साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था। मंद-मंद शीतल पवन की मृदु हिलोरें शरीर को पुलक से भर रही थीं। सुरेंद्र ने मुग्ध होकर कहा, "यह जगह तो बहुत सुंदर है।"

शरत् बोला, "हाँ, इस जगह आकर बैठना मुझे बहुत अच्छा लगता है। न जाने क्या-क्या सोचा करता हूँ। बड़ी-बड़ी बातें सब यहीं दिमाग में आती हैं।"

सुरेंद्र ने कहा, "सचमुच ऐसा लगता है कि जैसे तपोवन में आ गया हूँ। आज समझा हूँ कि इस बार तुमने अंकगणित में सौ में से सौ अंक कैसे पाए थे।"

न जाने कितनी बार वह इस पवित्र मौन-एकांत में आकर बैठा होगा। दूर से आती बच्चों की शरारतों की आवाज़ें गंगा की कल-कल ध्वनि में मिलकर एक रहस्यमय वातावरण का निर्माण करती होंगी। प्रकृति का सौंदर्य जैसे उसके थके तन-मन को सहलाता होगा और तब उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की होगी, "मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन-भर सौंदर्य की उपासना करूँगा, कि मैं जीवन-भर अन्याय के विरुद्ध लड़ूँगा, कि मैं

कभी छोटा काम नहीं करूँगा।" उसने अनुभव किया होगा कि घर में एकांत नहीं है। ज़रा-ज़रा-सी ध्वनि मस्तिष्क में प्रतिध्वनि पैदा करती है और उभरते हुए चित्र को धुँधला कर देती है...तभी उसने इस तपोवन को ढूँढ़ निकाला होगा।

लेकिन उसने अंकगणित में ही शत-प्रतिशत अंक नहीं पाए थे, अंग्रेज़ी स्कूल के प्रथम वर्ष में उसने परीक्षा में प्रथम स्थान भी पाया था। हुआ यह कि छात्रवृत्ति की परीक्षा पास करने के बाद अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए उसे नीचे की कक्षा में दाखिल होना पड़ा, इसलिए दूसरे विषय उसके लिए सहज हो गए और वह बीच में ही एक वर्ष लाँघकर ऊपर की कक्षा में पहुँच गया। इन सब बातों से जहाँ मित्रों में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी, वहाँ गुरुजन भी आश्वस्त हो गए।

स्कूल में एक छोटा-सा पुस्तकालय भी था। वहीं से लेकर उसने उस युग के सभी प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ पढ़ डालीं। युगसंधि के उस काल में जब कर्ता लोग चंडी-मंडप में बैठकर चौपड़ को लेकर शोर मचाते तब किशोर-वय के लोग चोरी-चोरी बंकिम-रवींद्र की पुस्तकों के पन्ने पलटते। लेकिन शरत् केवल पढ़ता ही नहीं था, उसको समझने और आसपास के वातावरण का सूक्ष्म अध्ययन करने की सहज प्रतिभा भी उसमें थी। वह हर वस्तु को करीब से देखता था।

उस दिन अवकाश प्राप्त अध्यापक अघोरनाथ अधिकारी स्नान के लिए गंगा घाट की ओर जा रहे थे। कपड़े उठाए पीछे-पीछे चल रहा था शरत्। एक टूटे हुए घर के भीतर से एक स्त्री के धीरे-धीरे रोने का करुण स्वर सुनाई दिया। अधिकारी महोदय ठिठक गए। बोले, "यह कौन रोता है? क्या हुआ इसे?"

शरत् ने उत्तर दिया, "मास्टर मुशाई, इस नारी का स्वामी अंधा था। लोगों के घरों में कामकाज करके यह उसको खिलाती थी। कल रात इसका वह अंधा स्वामी मर गया। वह बहुत दुखी है। दुखी लोग बड़े आदमियों की तरह दिखाने के लिए ज़ोर-ज़ोर से नहीं रोते। उनका रोना दुख से विदीर्ण प्राणों का क्रंदन होता है। मास्टर मुशाई, यह सचमुच का रोना है।"

छोटी आयु के बालक से रोने का इतना सूक्ष्म विवेचन सुनकर अघोर बाबू विस्मित हो उठे। वे कलकत्ता रहते थे। लौटकर उन्होंने अपने एक मित्र से इस

घटना की चर्चा की। मित्र ने कहा, "जो रुदन के विभिन्न रूपों को पहचानता है, वह साधारण बालक नहीं है। बड़ा होकर वह निश्चय ही मनस्तत्व के व्यापार में प्रसिद्ध होगा।"

लेकिन गांगुली परिवार में उसकी इस सहज प्रतिभा को पहचानने वाला कोई नहीं था। इस घोर आदर्शवादी परिवार में केवल एक ही व्यक्ति ऐसा था जिस पर नवयुग की हवा का कुछ प्रभाव हुआ था। वे थे केदारनाथ के चौथे भाई अमरनाथ। वे शौकीन तबीयत के थे। कबूतर पालते थे। और उस युग में कंघा, शीशा और ब्रुश इत्यादि का प्रयोग करते थे। सिर पर अंग्रेज़ी फ़ैशन के बाल भी रखते थे। घर के बालक उनके इस रूप पर मुग्ध थे। मुग्ध होने का एक और भी कारण था। दफ़्तर से लौटकर वे रोज़ उन्हें कुछ न कुछ देते थे। जैसे पीपरमेंट की गोलियाँ इत्यादि। लेकिन इसी कारण बड़े भाई उनसे अप्रसन्न थे। और इसी कारण एक दिन चोटी रखकर शेष बाल उन्हें कटा देने पड़े थे।

पढ़ने में भी उनकी रुचि कम नहीं थी। बंकिमचंद्र के 'बंगदर्शन' का प्रवेश उन्हीं के द्वारा गांगुली परिवार में हो सका था। यह 'बंगदर्शन' बाँग्ला साहित्य में नवयुग का सूचक था। गांगुली लोगों के हाली शहर से बंकिमचंद्र का 'कांठालपाड़ा' दूर नहीं था। उस गाँव की एक लड़की इस परिवार में वधू बनकर भी आई थी, लेकिन 'घर का जोगी जोगना आन गाँव का सिद्ध'। बंकिमचंद्र की यहाँ तनिक भी प्रतिष्ठा नहीं थी। नवयुग के संदेशवाहक होने के नाते इस कट्टर परिवार में अगर थी तो थोड़ी-बहुत अप्रतिष्ठा ही थी, लेकिन फिर भी अमरनाथ चोरी-छिपे 'बंगदर्शन' लाते थे। उनसे वह भुवनमोहनी के द्वारा मोतीलाल के पास पहुँचता था और वहाँ से कुसुमकामिनी की बैठक में।

दुर्भाग्य से अमरनाथ बहुत दिन जी नहीं सके। बच्चों को अपार व्यथा में डुबोकर वे छोटी आयु में ही स्वर्गवासी हो गए। उनकी कमी किसी सीमा तक मोतीलाल और कुसुमकामिनी ने पूरी की। कुसुमकामिनी सबसे छोटे नाना अघोरनाथ की पत्नी थीं। छात्रवृत्ति परीक्षा पास करके स्वयं उन्होंने ईश्वरचंद्र विद्यासागर के हाथों से पारितोषिक पाया था। जैसा कि होता आया है, तब भी स्त्रियों का मुख्य कार्य था, रसोई का जुगाड़ करना और घर-गृहस्थी के दूसरे कार्य

सँभालना। उससे समय बचा तो जीवन को जीवंत बनाने के लिए कलह करना या सोना। फिर जागने पर परनिंदा में रस लेना, लेकिन कुसुमकामिनी यह सब नहीं कर पाती थीं। जिस दिन उनकी रसोई बनाने की बारी नहीं होती थी, उस दिन उनकी बैठक में (या ऊपर छत पर) एक छोटी-मोटी गोष्ठी होती थी। उसमें वे स्वयं 'बंगदर्शन' के अतिरिक्त 'मृणालिनी', 'वीरांगना', 'बृजांगना', 'मेघनाद वध' और 'नीलदर्पण' पढ़कर सुनाती थीं। उनका स्वर और पढ़ने की शैली इतनी मर्मस्पर्शी थी कि सभी निस्पंद हो उठते थे। बालक शरत् आश्चर्य और आदर से भरकर सोचता कि लेखक भी कितना असाधारण व्यक्ति होता है। संभवत: उसके मन में तब लेखक बनने की बात नहीं उठी थी। पर उसने लेखक को मनुष्य से ऊपर अवश्य माना था। यह उसके उपार्जन करने का युग था, लेखक बनने का नहीं। इस गोष्ठी में उसने साहित्य का पहला पाठ पढ़ा था और फिर बहुत दिन बाद पढ़ी 'बंगदर्शन' में कविगुरु की युगांतरकारी रचना 'आँख की किरकिरी'। पढ़कर उस किशोर को जो गहरे आनंद की अनुभूति हुई, उसको न वह किसी को बता सका, न जीवन-भर भूल ही सका। अब तक उसका मन भूत-प्रेतों की कहानियों से ही आतंकित रहा था। इस नए जीवन-दर्शन ने उसे प्रकाश और सौंदर्य के एक नए जादूभरे संसार में पहुँचा दिया। जैसे पुश्किन की रचना पढ़ने के बाद ताल्सताय पुकार उठे थे, "मैं पुश्किन से बहुत कुछ सीख सकता हूँ। वे मेरे पिता हैं। वे मेरे गुरु हैं।" वैसे ही शरत् ने कहा होगा, "मैं उनसे बहुत कुछ सीख सकता हूँ। वे आज से मेरे गुरु हुए।"

और सचमुच शरत् जीवन के अंतिम क्षण तक उन्हें अपना गुरु ही मानते रहे।

वास्तव में मणि-शरत् की शिक्षा का आदि पर्व कुसुमकामिनी की पाठशाला में ही शुरू हुआ था। पाठ्यपुस्तक का क्रम समाप्त होने पर साहित्य की बारी आती थी। शैशव से लेकर यौवन के प्रारंभ होने तक इस क्रम में कोई व्यवधान नहीं पड़ा। अपराजेय कथाशिल्पी शरत्चंद्र के निर्माण में कुसुमकामिनी का जो योगदान है उसे कभी नहीं भुलाया जा सकेगा।

इसी गोष्ठी में अचानक एक दिन क्रांति हो गई। एक नए स्रोत से आकर उस दिन रवींद्रनाथ की कविता 'प्रकृतिर प्रतिशोध' का स्वर गूँज उठा। पढ़नेवाले थे

उसी परिवार के एक व्यक्ति। वे बाहर रहकर पढ़े थे। इस परिवार में वर्जित संगीत और काव्य में उनकी दिलचस्पी थी। उस कविता को सुनाने के लिए उन बंधु ने परिवार की सभी नारियों को इकट्ठा किया था। किसने कितना समझा, पता नहीं, लेकिन शरत् की आँखों में आँसू आ गए। उन्हें छिपाने के लिए वह उठकर बाहर चला गया।

(3)

नाना के इस परिवार में शरत् के लिए अधिक दिन रहना संभव नहीं हो सका। उसके पिता न केवल स्वप्नदर्शी थे, बल्कि उनमें कई और दोष थे। वे हुक्का पीते थे, और बड़े होकर बच्चों के साथ बराबरी का व्यवहार करते थे। उनकी शरारतों में वे सदा अपरोक्ष रूप से सहायता करते थे। जब उनमें से किसी को गोदाम में बंद करने की सज़ा मिलती तो वे चुपचाप उन्हें खाना दे आया करते थे। जब वे छूटते तो फूलों की माला तैयार करके उन्हें प्रसन्न कर देते थे। उनके बनाए कागज़ के नाना प्रकार के खिलौने बच्चों में बहुत लोकप्रिय थे। बड़े यत्न से वे स्लेट-पेंसिल लेकर उन्हें सुंदर अक्षर लिखना सिखाते थे। उनके लिए गंगा-स्नान का प्रबंध कर देते थे। कैसा आनंद है गंगा में कूदने में, यह बच्चे ही जानते हैं। तभी तो उनके लिए वे मरुस्थल में शाद्वल के समान थे। उनकी संवेदनशीलता अपरिसीम थी।

एक तो घर-जँवाई, इसके उपरांत कठोर अनुशासन वाले परिवार में ऐसा बर्ताव करना, इसी कारण वहाँ उनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व जैसे समाप्त हो गया था। जैसे उनके तन-मन दोनों को किसी ने खरीद लिया हो। उनका अपना उनके पास कुछ नहीं था। 'काशीनाथ' में काशीनाथ भी तो घर-जँवाई होकर रहता है। उसे भी मानसिक सुख नहीं है। "कभी-कभी वह ऐसा महसूस करने लगता, जैसे अचानक उसे किसी ने गरम पानी के कड़ाहे में छोड़ दिया हो। मानो सब ने मिलकर, सलाह करके उसकी देह को खरीद लिया हो। मानो अब वह उसकी अपनी नहीं रही।"

फिर भी किसी तरह दिन बीत रहे थे कि अचानक एक दुर्घटना हो गई। केदारनाथ की पत्नी विंध्यवासिनी देवी तांगे में कहीं जा रही थीं कि वह उलट गया।[1] उनके काफ़ी चोट आई। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह भागलपुर में ठीक नहीं हो सकीं। डॉक्टर ने कहा, "इन्हें कलकत्ता ले जाइए।"

काफ़ी व्ययसाध्य बात थी और परिवार की आर्थिक स्थिति तब तक बिगड़ चुकी थी। भाई अलग-अलग रहने लगे थे। उनमें से अमरनाथ की मृत्यु हो चुकी थी और उनकी पुत्री विवाह के योग्य थी। पितृहीन कन्या का विवाह देर से होने पर अपवाद उठ खड़ा होने का डर रहता है। केदारनाथ करें तो क्या करें? एक दिन उन्होंने मोतीलाल को बुलाया, कहा, "अब तुम्हारा यहाँ रहना संभव नहीं है। देवानंदपुर जाकर कोई काम करने का प्रयत्न करो।"

मोतीलाल ने सुन लिया, भुवनमोहिनी ने भी सुन लिया। कोई रास्ता नहीं था। शिकवा-शिकायत करतीं भी तो किससे करतीं और कैसे करतीं। इसीलिए शरत् ने एक दिन पाया कि वह फिर देवानंदपुर लौट आया है।

लेकिन लौट आने से पूर्व उसका परिचय गांगुली परिवार के पड़ोस में रहने वाले मजूमदार परिवार के राजू से हो चुका था। वह परिचय अनायास ही नहीं हो गया था। इसके पीछे प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा का काफ़ी बड़ा इतिहास है।

श्यामवर्ण, स्वस्थ चेहरा, आजानबाहु, मुख पर चेचक के सामान्य निशान, शरीर में जितनी शक्ति मन में उतना ही साहस, ऐसे राजेंद्रनाथ उर्फ़ राजू के पिता रामरतन मजूमदार डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर होकर भागलपुर आए थे, लेकिन मतभेद हो जाने पर उन्हें त्यागपत्र देते देर न लगी। ठीक गांगुलियों के पास उनका घर था और आसपास की ज़मीन को लेकर दोनों परिवारों में काफ़ी मनमुटाव भी था। उस समय वहाँ घना वन था। माता-पिता के अनुशासन से पीड़ित बालक इसी वन में शरण ग्रहण करते थे। धूम्रपान, गाँजा और चरस के साथ-साथ भैंसों का दूध चुराकर शरीर बनाने का काम यहाँ निरंतर चलता था।

रामरतन मजूमदार ने अपने सात बेटों के लिए सात कोठियाँ बनवाईं, लेकिन उनके परिवार में कुछ ऐसी बातें थीं, जिनके लिए पुरातनपंथी बंगाली समाज उन्हें

1. सन् 1888 ई.

कभी क्षमा नहीं कर सका। वे लोग चीनी मिट्टी के प्यालों में खाना खा लेते थे। मुसलमान बैरे से काँच के गिलास में पानी लेने और छोटे भाई की विधवा पत्नी से बातें करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। वे मोज़े पहनते, दाढ़ी रखते, क्लब जाते और बातों में दर्शन का पुट देते थे।

पिता की स्वाधीनचेता परंपरा को राजू ने चरम सीमा तक पहुँचा दिया था। पतंगबाज़ी के द्वंद्वयुद्ध में शरत् की तरह वह भी पारंगत था। इसलिए स्वाभाविक रूप से दोनों एक-दूसरे को हराने की कामना करते थे। राजू के पास पैसे का बल था। पतंग का बढ़िया से बढ़िया सरंजाम जुटाने में उसे ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई। लेकिन शरत् के पास पैसा कहाँ से आता। उसके दल ने बोतल के काँच को मैदा की तरह पीसकर और उसमें नाना उपक्रम मिलाकर माँझा तैयार किया। उस दिन शनिवार था। संध्या होते ही शरत् की गुलाबी पतंग मनचाही दिशा में उड़ चली। उसी समय देखा गया कि एक सफ़ेद पतंग धीरे-धीरे उसके पास आ रही है। यह थी राजू की पतंग। बस द्वंद्वयुद्ध आरंभ हो गया। पेंच पर पेंच लड़े जाने लगे। दोनों दल अपनी-अपनी विजय के लिए उत्तेजित हो उठे। 'वह मारा', 'वह काटा' का कर्णभेदी स्वर सबको डोलायमान करने लगा। सहसा लोगों ने देखा कि सफ़ेद पतंग कटकर इधर-उधर लड़खड़ाती हुई धरती की ओर आ रही है। फिर क्या था, शरत् के दल के हर्ष का पारावार नहीं रहा। उधर राजू ने उसी क्षण पतंग का सभी सरंजाम गंगा को अर्पित कर दिया।

लेकिन इसी प्रतियोगिता और संघर्ष के बीच से होकर वे धीरे-धीरे एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होने लगे। राजू असाधारण प्रवृत्ति का बालक था-अमित साहस, अपूर्व प्रत्युत्पन्नमति, सब कार्यों में सफलता प्राप्त करने वाला। शरत् की स्थिर, धीर और शांत बुद्धि अभिभावकों के दुर्ग की मोटी दीवारों को लाँघकर उसे चकित करती रहती थी और वह उससे मित्रता करने के लिए आतुर हो उठता था।

आखिर एक दिन सब विघ्न-बाधाओं को लाँघकर दोनों किशोर एक हो गए। राजू, जो आयु में बड़ा था, शीघ्र ही शरत् के सभी दुस्साहसिक कार्यों का मंत्रदाता बन गया। उन दोनों की मित्रता का एक और कारण था, संगीत और अभिनय के प्रति दोनों का समान प्रेम। शरत् का कंठ अत्यंत मधुर था।

बार-बार इस मित्रता के संबंध में उसे चेतावनी मिली होगी पर तत्कालीन सदाचार और अनुशासन क्या कभी उसे बाँधकर रख सके। उस परिवार के मुखियों में ऐसा एक भी नहीं था, जो उसे प्रेरणा और सराहना के दो शब्द भी कहता। यही समय तो जीवन के सर्वांगीण विकास का प्रारंभिक काल माना जाता है। तब उसके लिए यह स्वाभाविक था कि वह परिवार के बाहर प्रेरणा के स्रोत खोजता, क्योंकि प्रारंभ से ही उसमें वे गुण विद्यमान थे जो व्यक्ति को महान बनने का अवसर देते हैं।

(4)

मोतीलाल चट्टोपाध्याय चौबीस परगना ज़िले में कांचड़ापाड़ा के पास मामूदपुर के रहने वाले थे। उनके पिता बैकुंठनाथ चट्टोपाध्याय संभ्रांत राढ़ी ब्राह्मण परिवार के एक स्वाधीनचेता और निर्भीक व्यक्ति थे। और वह युग था प्रबल प्रतापी ज़मींदारों के अत्याचार का, लेकिन वे कभी उनसे दबे नहीं। उन्होंने सदा प्रजा का ही पक्ष लिया। इसीलिए एक दिन उनके क्रोध का शिकार हो गए। सुना गया कि एक दिन ज़मींदार ने उन्हें बुलाकर किसी मुकदमे में गवाही देने के लिए कहा। उन्होंने उत्तर दिया, "मैं गवाही कैसे दे सकता हूँ? उसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता।"

ज़मींदार ने कहा, "गवाही देने के लिए जानना ज़रूरी नहीं है।"

झूठी गवाही आज भी दी जाती है। उस दिन भी दी जाती थी, लेकिन बैकुंठनाथ ने साफ़ इनकार कर दिया। प्रबल प्रतापी ज़मींदार क्रुद्ध हो उठा।

कारण कुछ और भी हो सकता है। एक दिन अचानक वे घर से गायब हो गए। मोतीलाल तब बहुत छोटे थे। शिशु पुत्र को गोद में चिपकाए बैकुंठनाथ की पत्नी रात भर पति की राह देखती रही, लेकिन वे नहीं लौटे। सबेरा होते-होते एक आदमी ने आकर कहा, "बहू माँ...बहू माँ, अनर्थ हो गया। बैकुंठनाथ को किसी ने मार डाला। उनका शव स्नानघाट पर पड़ा है।"

बहू माँ की जैसे चीख निकल गई। हतप्रभ-विमूढ़ उन्होंने बालक को कसकर छाती से लगा लिया। वह न बोल सकती थीं और न बेहोश हो सकती थीं। ज़मींदार का इतना आतंक था कि वह चिल्लाकर रो भी नहीं सकती थीं। उसका अर्थ होता, पुत्र से भी हाथ धो बैठना। गाँव के बड़े-बूढ़ों की सलाह के अनुसार उसने जल्दी-जल्दी पति की अंतिम क्रिया समाप्त की और रातोंरात देवानंदपुर अपने भाई के पास चली गईं।

कुछ बड़े होने पर मोतीलाल का विवाह भागलपुर के केदारनाथ गंगोपाध्याय की दूसरी बेटी भुवनमोहिनी से हुआ। उस समय के बहुत से बंगालियों की तरह केदारनाथ के पिता रामधन गंगोपाध्याय घोर दारिद्र्य से तंग आकर जीविका की तलाश में, हाली शहर से यहाँ आकर बस गए थे। वे इतने प्रतिभाशाली और परिश्रमशील थे कि सरकार में ऊँचे पद पर पहुँचने में उन्हें देर नहीं लगी। फिर तो संपन्नता और प्रतिष्ठा दोनों ने ही उनका मुक्त होकर वरण किया। लेकिन उस समय विवाह के लिए संपन्नता की आवश्यकता नहीं होती थी। होती थी कुलीनता और वंशमर्यादा की। मोतीलाल को सद्वंश की कुलीन संतान जानकर ही केदारनाथ ने अपनी कन्या उन्हें दी। उन्हीं के पास रहकर मोतीलाल ने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उसके बाद पढ़ने के लिए वे पटना कालेज चले गए। चचिया ससुर अघोरनाथ उनके सहपाठी थे। लेकिन दोनों के स्वभाव में ज़रा भी समानता नहीं थी। मोतीलाल घोर अभाव में पले थे, परंतु माँ उन्हें बहुत प्यार करती थी, इसलिए बचपन में कोई ठीक दिशा उन्हें नहीं मिल सकी। उन्हें पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था, परंतु उससे अधिक शौक था कल्पनाओं में डूबे रहने का, "मुझे कल्पना की गोद में सिर रखकर सो जाने दो। मैं उस संसार को देखना चाहता हूँ जिसका यह संसार प्रतिबिंब है।" मोतीलाल यही कुछ थे।

उसके विपरीत अघोरनाथ थे कर्मठ, खरे और स्पष्टवादी। ऐसी स्थिति में कल्पनाप्रिय मोतीलाल से उनकी घनिष्ठता कैसे हो सकती थी? कालेज में भी वे बहुत अधिक देर नहीं टिक सके। देवानंदपुर लौटकर कोई नौकरी करने लगे। उन दिनों इंट्रेंस पास के लिए नौकरी पा लेना बहुत कठिन नहीं था। मामा ने अपने

घर के पास उन्हें थोड़ी-सी ज़मीन दे दी थी। कुछ रुपया जोड़कर उन्होंने बरामदे सहित दो कोठरियों का एक मंज़िला, दक्षिणद्वारी, पक्का घर बनवा लिया। इसी में रहकर वे अपनी गृहस्थी चलाने लगे।

मोतीलाल की माँ साहसी सुगृहिणी थीं, तो उनकी पत्नी शांत प्रकृति, निर्मल चरित्र और उदारवृत्ति की महिला थीं। वह सुंदर नहीं थीं परंतु वैदूर्य मणि की तरह अंतर के रूप से रूपसी निश्चय ही थीं। उनके सहज पातिव्रत्य और प्रेम की छाया में स्वप्नदर्शी, यायावर पति की गृहस्थी चलने लगी। यहीं पर 15 सितंबर, 1876 ई० तदनुसार 31 भाद्र, 1283 बंगाब्द, आश्विन कृष्णा द्वादशी, संवत् 1933, शकाब्द 1798, शुक्रवार की संध्या को एक पुत्र का जन्म हुआ। वह अपने माता-पिता की दूसरी संतान था। चार-एक वर्ष पहले उसकी एक बहन अनिला जन्म ले चुकी थी। माता-पिता ने बड़े चाव से पुत्र का नाम रखा 'शरत्चंद्र'।

देवानंदपुर बंगाल का एक साधारण-सा गाँव है। हरा-भरा, ताल-तलैयों, नारियल और केले के वृक्षों से पूर्ण। मलेरिया की प्रचुरता भी कम नहीं है। नवाबी शासन में यह फ़ारसी भाषा की शिक्षा का केंद्र था। डेढ़ सौ वर्ष पहले रायगुणाकर कवि भारतचंद्र राय ने, फ़ारसी भाषा का अध्ययन करने के लिए, अपना कैशोर्य काल यहाँ बिताया था। इसकी गणना प्राचीन सप्त ग्रामों में होती है। तब समृद्ध भी रहा होगा। भारतचंद्र के समय इस गाँव में हरिराम राय और रामचंद्र दत्त मुंशी पढ़ाने-लिखाने का काम करते थे। इन्हीं से उन्होंने फ़ारसी पढ़ी और स्वयं दो पद्य लिखकर इन्हें अमर कर गए :

ए तिन जनार कथा, पंचाली प्रबंधे गाथा।
बुद्धि रूप कैल नाना जना।।
देवानंदपुर ग्राम देवेर आनंद धाम।
हरिराम रायेर वासना।।
देवेर आनंद धाम, देवानंदपुर नाम।
ताहे अधिकारी राम रामचंद्र मुंशी।।
भारते नरेंद्र राय, देशे जार यश गाय।
होये मोरे कृपादाय पड़ाइल पारसी।।

इसी गाँव में शरत् का बाल्यकाल अत्यंत अभाव में आरंभ हुआ। माँ न जाने कैसे गृहस्थी चलाती थीं। जानती थीं पति कैसे हैं। उनसे शिकवा-शिकायत व्यर्थ है। सार्थक यही है कि घर की शोभा बनी रहे। उन्होंने न कभी गहनों की माँग की, न कीमती पोशाक की ही। आत्मोत्सर्ग ही मानो उनका दाय था। जब भागलपुर में वे रहती थीं तब चाचाओं के इतने बड़े परिवार में यह उन्हीं का अधिकार था कि सब माँओं के बच्चों को अपनी छाती में छिपाकर उनकी देख-रेख करें। कौन कब आएगा? कौन कब जाएगा? किसको क्या और कब खाना है? ऐसे असंख्य प्रश्नों को सुलझाने में उन्हें साँस लेने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती थी। निरंतर आवाज़ गूँजती रहती थी, "कहाँ है भुवन? ओ भुवन! अरे भुवन बेटी!"

मोतीलाल मानो आकाश में उड़नेवाली रंगीन पतंग थे। और भुवनमोहिनी थी निरंतर घूमते हुए चक्र के समान सीधी-सादी प्रकृति की महिला। उसका कोमल मन सबके दुख से द्रवित हो उठता था। इसीलिए सभी उसको प्यार करते थे, बड़े उसकी सेवा-परायणता पर मुग्ध थे, छोटे उसके स्नेह के लिए लालायित रहते थे। शरत्-साहित्य में खोजने पर ऐसे अनेक चरित्र मिल सकते हैं। माँ का ऋण चुकाने के लिए कथाकार शरत् ज़रा भी तो कृपण नहीं हुआ। लेकिन कैसी भी सरल और उदार नारी हो पति की अकर्मण्यता उसको ठेस पहुँचाती ही है। भुवनमोहिनी बहुत बार क्षुब्ध हो उठती, तब मोतीलाल चुपचाप घर से निकल जाते और देर तक बाहर ही रहते, 'शुभदा' के हारान बाबू की तरह।

(5)

शरत् जब पाँच वर्ष का हुआ तो उसे बाकायदा प्यारी (बंदोपाध्याय) पंडित की पाठशाला में भर्ती कर दिया गया, लेकिन वह शब्दशः शरारती था। प्रतिदिन कोई न कोई कांड करके ही लौटता। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया उसकी शरारतें भी बढ़ती गईं। उस दिन चटाई पर बैठे-बैठे उसने देखा कि पंडित जी चिलम में तंबाकू सजाकर कहीं चले गए हैं। बस वह उठा और चिलम में से तंबाकू हटाकर उसके स्थान पर ईंट के छोटे-छोटे टुकड़े रख दिए। पंडित जी ने लौटकर

चिलम में आग रखी और हुक्के पर रखकर गुड़गुड़ाने लगे, लेकिन धुआँ तो बाहर आ ही नहीं रहा। कई बार कोशिश की, पर व्यर्थ। तब चिलम को उलट-पलटकर देखा तो पाया कि तंबाकू के स्थान पर ईंट के टुकड़े रखे हुए हैं। समझ गए यह किसी विद्यार्थी का ही काम है। क्रुद्ध होकर उन्होंने पूछा, "सच बताओ, ये ईंट के टुकड़े चिलम में किसने रखे हैं?"

कुछ क्षण तक कोई कुछ नहीं बोला, लेकिन जब पंडित जी क्रोध से बार-बार चीत्कार करने लगे तो, डर के मारे एक लड़के ने शरत् का नाम ले दिया। सुनकर पंडित जी ने बेंत हाथ में उठाई और मारने के लिए उसकी ओर लपके। शरत् ने यह देखा तो तुरंत छलांग लगा दी। जाते समय उस लड़के को धक्का देना नहीं भूला जिसने उसका नाम लिया था। वह गिर पड़ा। पंडित जी उसको उठाने लगे और उसी बीच में शरत् यह जा और वह जा।

क्रोध से काँपते हुए पंडित जी शरत् के घर पहुँचे। उसकी कहानी सुनकर माँ के क्रोध का भी ठिकाना न रहा। घर लौटने पर उसने शरत् को खूब पीटा। बीच-बीच में अपने कपाल पर भी हाथ मारकर कहती, "क्या करेगा यह लड़का? कैसे चलेगा इसका काम?..." लेकिन सास ने उसे समझाया, "बहू, तू इसे मत मार! एक दिन इसकी मति लौट आएगी। और यह बहुत बड़ा आदमी होगा। मैं वह दिन देखने के लिए नहीं रहूँगी, लेकिन तू देख लेना, मेरी बात झूठ नहीं होगी।"

पंडित जी भी जब कभी उनके पास शिकायत लेकर पहुँचते तब उनसे भी वह बड़े शांत भाव से यही कहतीं, "पंडित जी, न्याड़ा[1] थोड़ा दुष्ट तो है पर बड़ा होकर यह भलामानस ही बनेगा।"

पंडित जी स्वयं कई बार उसकी शरारतों को अनदेखा कर जाते। एक तो वह पढ़ने में तेज़ था, दूसरे उनके बेटे काशीनाथ का परम मित्र भी था। काशीनाथ उसी स्कूल में पढ़ता था और उसी स्कूल में पढ़ती थी उसके एक मित्र की बहन। न जाने कैसे शरत् की उससे मित्रता हुई। वे अकसर दोनों एक साथ घूमते हुए दिखाई देते। जितना एक-दूसरे को चाहते उतना ही झगड़ा भी करते। नदी या तालाब पर

1. शरत् के पुकारने का नाम

मछली पकड़ना, नाव लेकर नदी में सैर करना, बाग से फल चुराना, पतंग का सरंजाम तैयार करना, वन-जंगल में घूमना, इन सब प्रकार के बाल सुलभ कामों में वह बालिका शरत् की संगिनी थी। असली नाम उसका क्या था किसी को पता नहीं परंतु सुभीते के लिए लोग उसे धीरू के नाम से जानते हैं।

धीरू को एक शौक था, करौंदों की ऋतु आती तो वह उनकी माला तैयार करती और शरत् को भेंट कर देती। शायद माल्यार्पण का अर्थ वह तब तक नहीं जानती थी। लेकिन समय के देवता ने एक न एक दिन यह रहस्य उन दोनों को समझा ही दिया होगा। वैसे उन दोनों का संबंध कम रहस्यमय नहीं था। गरमी के दिनों में एक दिन क्या हुआ—शरत् 'देवदास' की तरह पाठशाला के कमरे में एक कोने में एक फटी हुई चटाई के ऊपर बैठा था। स्लेट हाथ में लिए वह कभी आँखें खोलता, कभी मूँदता, कभी पैर फैलाकर जमुहाई लेता। अंत में वह बहुत ही चिंताशील हो उठा। उसने निश्चय किया कि ऐसा समय गुड्डी उड़ाते हुए घूमने-फिरने के लिए होता है। बस क्षण-भर में एक युक्ति उसे सूझ गई। पाठशाला में उस समय जलपान की छुट्टी थी। बालक नाना प्रकार के खेल खेलते हुए शोरगुल कर रहे थे। वह शरारती था, इसलिए उसे छुट्टी नहीं मिली थी। एक बार पाठशाला से निकलता तो लौटकर नहीं आता। कक्षा के प्रमुख छात्र भोलू की देखरेख में उसे पढ़ने की आज्ञा थी।

उसने देखा कि पंडित जी सो रहे हैं और भोलू टूटी हुई बेंच पर ऐसे बैठा है जैसे पंडित जी हों। वह चुपचाप स्लेट लेकर उसके पास पहुँचा। बोला, "यह सवाल समझ में नहीं आ रहा है।"

भोलू ने गंभीर होकर कहा, "लाओ ज़रा स्लेट, देखूँ तो।"

जिस समय भोलू ज़ोर-ज़ोर से बोलकर सवाल निकालने की चेष्टा कर रहा था, उसी समय एक घटना घट गई। सहसा भोलू बेंच के पास जो चूने का ढेर लगा हुआ था उसमें जा गिरा और शरत् का फिर कहीं पता न लगा। धीरू यह देखकर ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजा-बजाकर हँसने लगी। उसी समय पंडित जी जाग उठे। भोलू का रूप तब देखते ही बनता था। सिर से पैर तक चूने में रंगकर भूत की तरह दिखाई देता था। और रोना उसका किसी तरह भी बंद नहीं हो रहा था। पंडित जी को स्थिति समझते देर नहीं लगी। बोले, "तो वह शरता हरामज़ादा तुझे धक्का देकर भाग गया है?"

भोलू ने किसी तरह कहा, "आं, आं!"

उसके बाद शरत् की जो खोज मची वह किसी छोटी-मोटी सेना के आक्रमण से कम नहीं थी। लड़के नाना प्रकार की बातें करते उसे ढूँढ़ रहे थे, लेकिन कोई उसको पकड़ नहीं सका। जिस किसी ने उसके पास पहुँचने की चेष्टा की उसी पर उसने ईंट फेंक मारी।

धीरू सब कुछ देख रही थी। वह यह भी जानती थी कि शरत् इस समय कहाँ गया होगा। थोड़ी देर बाद उसने अपने आँचल में मूड़ी बाँधी और ज़मींदार के आम के बाग में प्रवेश किया। वहीं एक बाँस का भिढ़ा था। पास पहुँचकर उसने देखा, शरत् वहाँ बैठा हुआ हुक्का पी रहा है। उसे देखते ही बोला, "लाओ, क्या लाई हो?"

और यह कहते-कहते उसके आँचल में से मूड़ी खोलकर खाने लगा। वह खाता रहा और धीरू पंडित जी की बात सुनाती रही। अचानक वह बोला, "पानी लाई हो?"

धीरू ने कहा, "पानी तो नहीं लाई।"

शरत् बिगड़कर बोला, "तो अब जाकर लाओ।"

धीरू को यह अच्छा नहीं लगा। कहा, "अब मैं नहीं जा सकती। तुम चलकर पी आओ।"

"मैं यहाँ से नहीं जा सकता। तुम्हीं जाकर ले आओ।"

धीरू नहीं उठी। शरत् ने गुस्सा होकर कहा, "जाओ, मैं कह रहा हूँ न।"

धीरू अब भी चुप रही। तब शरत् ने उसकी पीठ पर एक घूँसा मारा। कहा, "जाएगी कि नहीं?"

धीरू रो पड़ी। एकदम उठते हुए बोली, "मैं अभी जाकर तुम्हारी माँ से सब कुछ कह दूँगी। यह भी कहूँगी कि तुम हुक्का पी रहे हो।"

"कह दे, जा मर!"

उस दिन फिर शरत् को माँ के हाथों मार खानी पड़ी। धीरू फिर पिटी, लेकिन दोनों की मित्रता में इससे कोई अंतर नहीं पड़ा। वह निरंतर प्रगाढ़ ही होती गई। बहुत दिन बाद शैशव की इस संगिनी को आधार बनाकर शरत् ने अपने कई उपन्यासों की नायिकाओं का सृजन किया। 'देवदास' की पारो, 'बड़ी दीदी' की

माधवी और 'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी, ये सब धीरू ही का तो विकसित और विराट रूप है। विशेषकर देवदास में तो जैसे उसने अपने बचपन को ही मूर्त रूप दिया है।

दिन पर दिन बीतते चले जाते थे, इन दोनों बालक-बालिका के आमोद की सीमा नहीं थी। दिन-भर धूप में घूमते-फिरते, संध्या को घर लौटकर मार खाते। रात को निश्चिंत-निरुद्वेग सो जाते। दूसरे दिन सवेरा होते ही फिर भाग जाते और फिर संध्या को तिरस्कार-प्रहार सहन करते। तीसरे दिन, चौथे दिन, बार-बार यही कहानी दोहराई जाती। इनका और कोई संगी-साथी नहीं था और न उसकी कोई ज़रूरत ही थी। गाँव भर में उपद्रव करते फिरने के लिए दोनों ही यथेष्ट थे।

बीच-बीच में मछली का शिकार और नाव खेकर दिन काटने के साथ-साथ शरत् यात्रादल[1] में जाकर शागिर्दी भी करता था। अपने मधुर कंठ के कारण वह उनके लिए बहुत उपयोगी था। लेकिन जब उससे भी उसका जी ऊब जाता तो अंगोछा कंधे पर रखकर निकल पड़ता। यह निकल पड़ना विश्वकवि के काव्य की निरुद्देश्य यात्रा नहीं थी। ज़रा दूसरे ढंग की थी। वह भी जब खत्म हो जाती तो फिर एक दिन चोट खाए हुए अपने चरणों को तथा निर्जीव देह को लेकर घर वापस लौट आता। वहाँ आवभगत होती और उसके बाद 'बोधोदय' तथा 'पद्यपाठ' में दिल लगाने का क्रम चलता। फिर एक दिन सब किया-कराया भूल जाता। दुष्ट सरस्वती कंधे पर सवार हो जाती। फिर शागिर्दी शुरू होती। फिर घर से नौ दो ग्यारह हो जाता।

उस दिन सरस्वती नदी के घाट पर पहुँचा तो सामने डोंगी पड़ी हुई थी। बस उसमें जा बैठा और उसे खेता हुआ पहुँच गया तीन-चार मील दूर कृष्णपुर गाँव में। वहाँ रघुनाथ बाबा का प्रसिद्ध अखाड़ा था। वहीं जाकर कीर्तन में हाज़िर हो गया। रात हो गई, फिर लौटना नहीं हो सका। अगले दिन पता लगाते-लगाते मोतीलाल स्वयं उसे लेने के लिए वहाँ पहुँचे। लेकिन यह एक दिन की अनायास यात्रा नहीं थी। किसी बड़ी यात्रा का आरंभ था। कभी अकेले, कभी मित्रों के साथ उसका वहाँ जाना जारी रहा।

---

1. जात्रादल, नाट्यदल (बंगाल में एक विशेष प्रकार की नाटक मंडली जो खुले में गाँव में नाटक करती है। इसे पाला भी कहते हैं)।

इन्हीं दिनों गाँव में सिद्धेश्वर भट्टाचार्य ने एक नया बाँग्ला स्कूल खोला। शायद वहाँ मन लगाकर पढ़ सके, इस खयाल से उसे वहाँ दाखिल किया गया, लेकिन उसके कार्यक्रम में कोई अंतर नहीं पड़ा। साल भर यूँ ही निकल गया। तभी अचानक मोतीलाल को 'डेहरी आन सोन' में एक नौकरी मिल गई। पिता के साथ कुछ दिन वह भी वहाँ रहा। लेकिन वह सारा समय खेलकूद में ही बीता। वहाँ एक नहर थी, उसके किनारे पक्की खिरनियाँ बटोरता या फंदा डालकर गिरगिट पकड़ता या फिर घाट पर जाकर बैठ जाता और कल्पनाओं के आल-जाल में डूब जाता। सभी प्रकार की शरारतों के बीच में अंतर्मुखी होने का उसका स्वभाव निरंतर प्रगति करता जा रहा था। अपने इस अल्पकालिक डेहरी प्रवास को वह कभी नहीं भूल सका। 'गृहदाह' में उसने इस नगण्य स्थान को भी अमर कर दिया।

देवानंदपुर लौटने पर उसे एक और शौक लग गया। शौक तो पहले भी था पर अब वह सनक की सीमा तक जा पहुँचा था। सरस्वती नदी छोटी-सी उथली नदी है। पाट भी बहुत चौड़ा नहीं है। पानी कमर से ऊपर नहीं जाता। अकसर उसमें सिवार भरी रहती। बीच-बीच में जहाँ खुला था वहीं छोटी-छोटी मछलियाँ खेला करती थीं। बंसी में आटे की गोली लगाकर वह उसे पानी में डाल देता और बैठा रहता। एक दिन उसने देखा कि मोहल्ले का नयन बागदी दादी के पास आया है और कह रहा है, "माँजी, मुझे पाँच रुपये दो। मैं तुम्हारे पोते को दूध पिलाकर अदा कर दूँगा। एक अच्छी-सी गाय लाना चाहता हूँ। बसंतपुर में मेरा एक रिश्ते का भाई है। उसने कहला भेजा है।"

दादी ने उसे पाँच रुपये दे दिए और वह प्रणाम करके चला गया। तभी शरत् के मन में सहसा एक विचार कौंध आया। सुन रखा था कि बसंतपुर में छीप बनाने के लिए अच्छा बाँस मिलता है। बस वह चुपचाप नयन बागदी के पीछे-पीछे चल पड़ा। एक मील चलने के बाद नयन ने उसे देखा। वह बहुत नाराज़ हुआ, लालच भी दिया। लेकिन शरत् पर कोई असर नहीं हुआ। तब ज़बरदस्ती पकड़कर वह

उसे दादी के पास ले आया। बोला, "रास्ता ठीक नहीं है। खतरा है। अगर समय से न लौट सका तो आप ही बताइए गऊ को सँभालूँगा या इसको।"

दादी खतरे की बात जानती थी। उसने शरत् से कहा, "तू नहीं जाएगा और अगर चोरी से गया तो मैं पंडित जी से कह दूँगी।"

नयन चला गया। शरत् भी पोखर में नहाने का बहाना करके शरीर में तेल मलता हुआ, अंगोछा कंधे पर डालकर, घर से निकल पड़ा। नदी के किनारे-किनारे वन-जंगल और आम-कटहल के बागों के भीतर होकर दो-ढाई मील तक दौड़ता हुआ चला गया। जिस जगह पर गाँव का कच्चा रास्ता ग्रांड ट्रंक रोड की पक्की सड़क से जाकर मिलता है वहीं जाकर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद नयन भी आ पहुँचा। शरत् को वहाँ देखकर हतप्रभ रह गया, पर अब लौटना संभव नहीं था। हँसकर बोला, "अच्छा देवता, चलो! जो भाग्य में होगा देखा जाएगा।"

बसंतपुर पहुँचकर नयन की बुआ ने उसकी खूब खातिर की। उसे गाय मिली और बालक शरत् को मिलीं बाँस की कमचियाँ। रुपये भी बुआ ने लौटा दिए। लौटते समय दिन डूब चला था। दो कोस भी नहीं चले होंगे कि चाँद निकल आया। रास्ते के दोनों ओर बड़े-बड़े पीपल और बरगद के पेड़ थे जो ऊपर जाकर आपस में ऐसे मिल गए थे कि राह में घना अँधेरा छा गया था। जब वे कच्ची राह पर पहुँचे तो झाड़-झंखाड़ों वाला वह जंगल और भी घना हो आया। इसी जंगल में तो लुटेरे आदमी को मारकर गाड़ देते थे और पुलिस उधर मुँह भी नहीं करती थी। गाँव का आदमी भी रिपोर्ट करने नहीं जाता था क्योंकि उन्हें शिक्षा मिली थी कि पुलिस के पास जाना आफ़त बुलाना है। बाघ के सामने पड़कर भी दैव-संयोग से कभी प्राण बच सकते हैं लेकिन पुलिस के पल्ले पड़कर नहीं। यहीं पहुँचकर सहसा उन्हें कुछ दूर पर चीख सुनाई दी। साथ ही लाठियों के बरसने का शब्द हुआ। उसके बाद सन्नाटा छा गया। नयन बोला, "बेचारा खत्म हो गया। अब हमें ज़रा होशियार होकर चलना चाहिए।"

बालक शरत् भय से काँपने लगा। साँस लेना भी मुश्किल हो गया। धुंध के मारे कुछ दिखाई भी नहीं देता था कि सहसा फिर किसी के भागने की आवाज़

सुनाई दी। नयन चीख उठा, "खबरदार, कहे देता हूँ, बामन का लड़का मेरे साथ है। अगर पाबड़ा[1] मारा तो तुममें से एक को भी जीता नहीं छोड़ूँगा।"

कहीं से कोई जवाब नहीं मिला। कुछ आगे बढ़कर उन लोगों ने उस आदमी को देखा जिसकी चीख सुनाई दी थी। बेचारा कोई भिखारी था। एकतारा बजाकर भीख माँगता था। नयन से नहीं रहा गया। क्रुद्ध होकर बोला, "अरे नरक के कीड़ों, तुमने बेकार ही एक वैष्णव भिखारी के प्राण ले लिए। जी चाहता है तुम लोगों को भी इसी प्रकार मार डालूँ।"

इस बार पेड़ की आड़ से किसी ने जवाब दिया, "धर्म-कर्म की बातें रहने दे। जान बचाना चाहता है तो भाग जा!"

"हरामज़ादो, कायरो, भागूँगा मैं, तुम्हारे डर से!"

यह कहकर उसने टेंट में से रुपये निकाले और टनटनाते हुए बोला, "देखो, मेरे पास रुपये हैं। हिम्मत हो तो पास आओ और ले जाओ। मैं नयन बागदी हूँ।"

कोई उत्तर नहीं आया। मोटी-सी गाली देकर वह फिर बोला, "क्यों रे, आओगे या मैं घर जाऊँ?"

फिर भी कोई जवाब नहीं आया। राह में दो-तीन पाबड़े पड़े हुए थे। नयन ने उन्हें उठा लिया। कुछ दूर वह चला भी, लेकिन फिर बोला, "ना भइया, आँखों से वैष्णव की हत्या देखकर हत्यारों को उसकी सज़ा दिए बिना मुझसे जाया नहीं जाएगा!"

बालक शरत् ने पूछा, "क्या करोगे?"

वह बोला, "क्या मैं एक साले को भी न पकड़ पाऊँगा? तब हम दोनों मिलकर लाठी से पीट-पीटकर उसे मार डालेंगे?"

पीटकर मारने के आनंद से बालक शरत् बहुत प्रसन्न हुआ। बोला, "नयन दादा, तुम अच्छी तरह उसे पकड़े रहना। मैं अकेले ही उसे पीटकर मार डालूँगा। लेकिन कहीं मेरी छीप टूट गई तो?"

नयन ने हँसकर कहा, "छीप की मार से नहीं मारेगा भइया, यह सोटा लो।" और एक अच्छा-सा पाबड़ा उसने बालक शरत् को दे दिया। तब तक लुटेरों ने समझ लिया था कि वे लोग चले गए हैं। इसलिए वे भिखारी की तलाशी लेने के

---

1. बाँस का बना हुआ दो-तीन फीट का डंडा जो फेंककर दुश्मन के पाँव पर मारा जाता है।

लिए आ पहुँचे। नयन पेड़ की आड़ में खड़ा हो गया। उनमें से एक ने उसे देख लिया और चिल्लाकर बोला, "वहाँ कौन खड़ा है?"

उसकी चिल्लाहट सुनकर सब लोग भाग चले, लेकिन वह पकड़ा गया। नयन ने उसे बाँध लिया और बालक के पास ले आया। वह बराबर रो रहा था। मुँह पर उसने कालिख पोत रखी थी। बीच-बीच में चूने की टिपकी लगी हुई थी। नयन ने उसे सड़क पर लिटाया और कसकर दो-तीन लातें लगाईं। फिर शरत् से कहा, "अब ताककर पाबड़ा मारो।"

बालक के हाथ-पैर काँप रहे थे। रुआँसा होकर उसने कहा, "मुझसे यह काम न हो सकेगा।"

नयन ने कहा, "तुमसे न हो सकेगा, अच्छा तो मैं ही इसे खतम करता हूँ।"

शरत् ने विनती के स्वर में कहा, "ना नयन दादा, मारो नहीं।"

तब तक वह आदमी जिसने शायद दो-तीन दिन से अन्न की शक्ल भी नहीं देखी थी सड़क पर ऐसे लेटा रहा जैसे मर गया हो। नयन ने झुक के उसकी नाक पर हाथ रखा और कहा, "नहीं, मरा नहीं, बेहोश हो गया है। चलो भइया हम भी घर चलें।"

(6)

तीन वर्ष नाना के घर भागलपुर रहने के बाद अब उसे फिर देवानंदपुर लौटना पड़ा। बार-बार स्थान परिवर्तन के कारण पढ़ने-लिखने में बड़ा व्याघात होता था। आवारगी भी बढ़ती थी, लेकिन अनुभव भी कम नहीं होते थे। भागलपुर में रहते हुए नाना प्रकार की शरारतों के बावजूद शरत् ने सदा अच्छा लड़का बनने का प्रयत्न किया था। पढ़ने में भी वह चतुर था। गांगुली परिवार के कठोर अनुशासन के विरुद्ध बार-बार उसके भीतर विद्रोह जागता था। परंतु यह कामना भी बड़ी प्रबल थी कि मैं किसी से छोटा नहीं बनूँगा। इसीलिए अंततः उसकी प्रसिद्धि भले लड़कों के रूप में होती थी। इन सारी शरारतों के बीच एकांत में बैठकर आत्मचिंतन करना उसे बराबर प्रिय रहा। चिंतन के इन क्षणों में अनेक कथानक उसके मन में उभरे। लिखने का प्रयत्न भी उसने किया।

वह सुंदर नहीं था। आँखों को छोड़कर उसमें कोई विशेषता नहीं थी, लेकिन आँखों की यह चमक ही सामने वाले को बाँध लेती थी। वर्ण श्यामता की ओर था और देह थी खूब रोगी, लेकिन पैर हिरन की तरह दौड़ने में मज़बूत थे।

बिल्ली की तरह पेड़ों पर चढ़ जाता था। बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, लेकिन दिशाहीन कठोर अनुशासन के कारण उसका प्रयोग पथभ्रष्टता में ही अधिक होता था।

देवानंदपुर लौटकर यह पथभ्रष्टता और भी बढ़ गई। अनुशासन के नाम पर यहाँ कुछ था ही नहीं। किसी तरह हुगली ब्रांच स्कूल की चौथी श्रेणी में भर्ती हो गया।[1] दो पक्के कोस चलकर स्कूल जाना पड़ता था। निपट कच्चा रास्ता, गरमी में धूल से भरा, वर्षा में कीचड़ ही कीचड़। गरीबी इतनी थी, आसानी से फ़ीस का जुगाड़ करना मुश्किल था। आभूषण बेच देने और मकान गिरवी रख देने पर भी वह अभाव नहीं मिट सका। पेट भी तो भरना होता था। फिर भी किसी तरह वह प्रथम श्रेणी[2] तक पहुँच गया परंतु अब तक पिता पर ऋण बहुत चढ़ गया था। वे फ़ीस का प्रबंध न कर सके और फ़ीस के अभाव में स्कूल जाना कैसे हो सकता था! शुरू-शुरू में वह किसी साथी के घर मुट्ठी भर भात खाकर, स्कूल के मार्ग में, पेड़ों के तले, शरारती बालकों की संगति में दिन काट देता था। फिर धीरे-धीरे उन लड़कों के दल का सरदार बन गया। विद्या पीछे छूट गई और हाथ में आ गई दुधारी छुरी, जिसे लेकर वह दिन-रात घूमा करता था। उसके भय के कारण उसके दल के सदस्यों की संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ रही थी। वह दूसरों के बागों के फल-फूल चोरी करने लगा था। लेकिन वह दोस्तों और गरीबों में बाँट देता था। दूसरों के ताल में मछली पकड़ने की उसकी जो पुरानी आदत थी वह और भी बढ़ गई थी। थोड़े ही दिनों में उसके आस-पास के लोग उससे तंग आ गए। लेकिन उसे पकड़कर दंड देने में वे सब असमर्थ थे। एक तो इसलिए कि वह फल और मछली को छोड़कर किसी और वस्तु को नहीं छूता था, दूसरे बहुत से निर्धन व्यक्ति उसकी लूट पर पलते थे। और गाँवों में निर्धनों की ही संख्या अधिक होती है। इन्हीं में एक व्यक्ति था बहुत दिनों से बीमार, गरीबी के कारण इलाज की ठीक-ठीक व्यवस्था कर पाना उसके लिए संभव नहीं था। आखिर उसे इसी दल की शरण लेनी पड़ी। तुरंत ये लोग बहुत-सी मछलियाँ पकड़ लाए और उन्हें बेचकर उसके इलाज का प्रबंध कर दिया। उपेक्षित-अनाश्रित रोगियों की

1. सन् 1889 या 1890, वर्तमान 7 वीं श्रेणी।
2. वर्तमान 10 वीं श्रेणी।

वे स्वयं भी यथाशक्ति सेवा करते थे। अनेक अँधेरी रातों में लालटेन और लंबी लाठी लेकर मीलों दूर, वे शहर से दवा ले आए हैं, डॉक्टर को बुला लाए हैं। इसलिए जहाँ कुछ लोग उनसे परेशान थे, वहाँ अधिकांश लोग उन्हें मन ही मन प्यार भी करते थे।

शरत् चोर नहीं था। घर में बेहद कंगाली थी, पर उसने कभी अपनी चिंता नहीं की। वह वास्तव में रॉबिनहुड के समान दुस्साहसी और परोपकारी था। अर्द्धरात्रि के निविड़ अंधकार में जब मनुष्य तो क्या, कुत्ते भी बाहर निकलने में डरते थे, वह चुपचाप पूर्व निर्दिष्ट बाग में या ताल पर पहुँचकर अपना काम कर लाता था। इस शुभ कार्य में उसके कई सहचर थे, परंतु उनमें सबसे प्रमुख था सदानंद।

इनका अड्डा ताल के किनारे वाले बाग के पास ऊँचे टीले की आड़ में एक गहरा खड्ड था। सब लुटी हुई सामग्री वे यहीं रखते थे। तंबाकू पीने का सरंजाम भी यहीं था। इस दल के उत्पात जब बहुत बढ़ गए तब सदानंद के अभिभावकों ने उसे आज्ञा दी कि वह शरत् से कभी न मिले, लेकिन मिलन क्या कभी निषेध की चिंता करता है? उन्होंने एक ऐसा उपाय खोज निकाला कि साँप मरे न लाठी टूटे। सदानंद के घर की छत से लगा एक ऊँचा पेड़ था। उसी पर चढ़कर शरत् छत पर पहुँच जाता और दोनों खूब शतरंज खेलते। उसके बाद रात्रि अभियान पर निकल पड़ते। सब काम समाप्त करने के बाद दोनों मित्र भले लड़कों की तरह अपने-अपने घर जाकर सो जाते थे। जब कभी भी उसके दिल में किसी काम को करने की इच्छा प्रबल हो उठती थी तो उस समय उसकी शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियों का स्फुरण भी आश्चर्यजनक हो उठता था।

बीच-बीच में मछुओं की नाव लेकर कभी अकेले, कभी मित्रों के साथ कृष्णपुर गाँव में रघुनाथदास गोस्वामी के अखाड़े में पहुँच जाना वह नहीं भूला था। यहीं कहीं उसका मित्र गौहर रहता था। 'श्रीकांत' चतुर्थ पर्व का वह आधा पागल कवि कीर्तन भी करता था। मालूम नहीं वहाँ किसी वैष्णवी का नाम कमललता था या नहीं, पर यह सच है कि किशोर जीवन के ये चित्र उसके हृदय पर सदा-सदा के लिए अंकित हो गए और आगे चलकर साहित्य-सृजन का आधार बने। न जाने कितने ऐसे चित्र उसने अपनी पुस्तकों में खींचे हैं।

‘श्रीकांत’ चतुर्थ पर्व में कथाशिल्पी शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है, “सीधा रास्ता छोड़कर वन-जंगलों में से इस-उस रास्ते का चक्कर लगाता हुआ स्टेशन जा रहा था...बहुत कुछ उसी तरह जिस तरह बचपन में पाठशाला को जाया करता था। चलते-चलते एकाएक ऐसा लगा कि सब रास्ते जैसे पहचाने हुए हैं, मानो कितने दिनों तक कितनी बार इन रास्तों से आया-गया हूँ। पहले वे बड़े थे, अब न जाने क्यों संकीर्ण और छोटे हो गए हैं। अरे यह क्या, यह तो खाँ लोगों का हत्यारा बाग है। अरे, यही तो है! और यह तो मैं अपने ही गाँव के दक्षिण के मुहल्ले के किनारे से जा रहा हूँ! उसने न जाने कब शूल की व्यथा के मारे इस इमली के पेड़ की ऊपर की डाल में रस्सी बाँधकर आत्महत्या कर ली थी। की थी या नहीं, नहीं जानता, पर प्राय: और सब गाँवों की तरह यहाँ भी यह जनश्रुति है। पेड़ रास्ते के किनारे है, बचपन में इस पर नज़र पड़ते ही शरीर में काँटे उठ आते थे, आँखें बंद करके एक ही दौड़ में इस स्थान को पार कर जाना पड़ता था।

पेड़ वैसा ही है। उस वक्त ऐसा लगता था कि इस हत्यारे पेड़ का धड़ मानो पहाड़ की तरह है और माथा आकाश से जाकर टकरा रहा है। परंतु आज देखा कि उस बेचारे में गर्व करने लायक कुछ नहीं है, और जैसे अन्य इमली के पेड़ होते हैं वैसा ही है। जनहीन ग्राम के एक ओर एकाकी नि:शब्द खड़ा है। शैशव में जिसने काफ़ी डराया है, आज बहुत वर्षों बाद के प्रथम साक्षात् में उसी ने मानो बंधु की तरह आँख मिचकाकर मज़ाक किया, ‘कहो मेरे बंधु, कैसे हो, डर तो नहीं लगता?’

मैंने पास जाकर परम स्नेह के साथ उसके शरीर पर हाथ फेरा। मन ही मन कहा, ‘अच्छा ही हूँ भाई। डर क्यों लगेगा, तुम तो मेरे बचपन के पड़ोसी हो... मेरे आत्मीय।’

संध्या का प्रकाश बुझता जा रहा था। मैंने विदा लेते हुए कहा, ‘भाग्य अच्छा था जो अचानक मुलाकात हो गई, अब जाता हूँ बंधु!’ ”

यह इन्हीं दिनों का चित्र तो है। केवल ‘मुंशी लोगों का हत्यारा बाग’ ‘खाँ, लोगों का हत्यारा बाग’ हो गया है। ये पंक्तियाँ लिखते समय उसका अपना बचपन जैसे आँखों में जी उठा था।

गल्प गढ़कर सुनाने की उसकी जन्मजात प्रतिभा भी इस समय खूब पल्लवित हो रही थी। पंद्रह वर्ष की आयु में ही वह इस कला में पारंगत हो चुका था। और उसकी ख्याति गाँव भर में फैल चुकी थी। इसी कारण शायद स्थानीय ज़मींदार व गोपालदत्त मुंशी उससे बहुत स्नेह करते थे। इनका पुत्र अतुलचंद्र तब कलकत्ता में एम.ए. में पढ़ता था। वह भी शरत् की गल्प गढ़ने की कला से बहुत प्रसन्न था और उसे छोटे भाई की तरह प्यार करता था। कभी-कभी वह उसे थिएटर दिखाने के लिए कलकत्ता ले जाता और कहता, "तुम ऐसी कहानियाँ लिखा करो, तब मैं तुम्हें थिएटर दिखाने ले जाऊँगा।"

दिखाने के बाद कहता, "अच्छा, तुम इसकी कहानी लिख सकते हो?"

शरत् ऐसी बढ़िया कहानी लिखता कि अतुल चकित रह जाता।

इसी तरह लिखते-लिखते एक दिन उसने मौलिक कहानी लिखनी शुरू कर दी। वह कौन सा दिन था, किस समय और कहाँ बैठकर उसने लिखना शुरू किया, कोई नहीं जानता, पर उस कहानी का नाम था 'काशीनाथ'। काशीनाथ उसका गुरुभाई था, उसी को नायक बनाकर उसने यह कहानी शुरू की थी। लेकिन वह नाम का ही नायक है। शायद काशीनाथ का रूप-रंग भी वैसा रहा होगा, पर घर जँवाई कैसा होता है यह उसने पिता को सुसराल में रहते देखकर जाना था। शेष कथानक का आधार भी कोई देखी या पढ़ी हुई घटना हो सकती है। उस समय वह छोटी-सी कहानी थी। बाद में भागलपुर में उसने उसे फिर से लिखा। 'काकबासा' और 'कोरेल ग्राम' दो और कहानियाँ इसी समय[1] उसके मस्तिष्क में उभरी थीं। कुछ और कहानियाँ भी उसने लिखी होंगी, पर यही कुछ नाम काल की क्रूर दृष्टि से बचे रह सके।

सूक्ष्म पर्यवेक्षण की प्रवृत्ति उसमें बचपन से ही थी। जो कुछ भी देखता उसकी गहराई में जाने का प्रयत्न करता। और यही अभिज्ञता उसकी प्रेरणा बन जाती। गाँव में एक ब्राह्मण की बेटी थी, बाल विधवा, नाम था उसका नीरू। बत्तीस साल की उमर तक कोई कलंक उसके चरित्र को छू भी नहीं पाया था। सुशीला, परोपकारिणी, धर्मशीला और कर्मठ होने के नाते वह प्रसिद्ध थी। रोग में

1. सन् 1893 ई.

सेवा, दुख में सांत्वना, अभाव में सहायता, आवश्यकता पड़ने पर महरी का काम भी करने में वह संकोच नहीं करती थी। गाँव में एक भी घर ऐसा नहीं था जिसने उससे किसी न किसी रूप में सहायता न पाई हो। शरत् उसे 'दीदी' कहकर पुकारता था। दीदी भी उसे बहुत प्यार करती थी। दोनों एक ही पर दुख-कातर जाति के व्यक्ति थे न।

इसी दीदी का 32 वर्ष की उमर में अचानक एक बार पदस्खलन हुआ। गाँव के स्टेशन का परदेसी मास्टर उसके जीवन को कलंकित करके न जाने कहाँ भाग खड़ा हुआ। उस समय गाँव वाले उसके सारे उपकार, सेवा-टहल, सब कुछ भूल गए। उन हृदयहीन लोगों ने उसका बहिष्कार कर दिया। उससे बोलना-चालना तक बंद कर दिया। बेचारी एकदम असहाय हो उठी। स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरने लगा, यहाँ तक कि वह मरणासन्न हो गई। इस हालत में भी कोई उसके मुँह में एक बूँद पानी डालने के लिए नहीं आया। किसी ने उसके दरवाज़े पर जाकर झाँका तक नहीं, जैसे वह कभी थी ही नहीं।

शरत् को भी यह आज्ञा थी कि वह वहाँ नहीं जाए, लेकिन उसने क्या कभी कोई आज्ञा मानी थी। रात के समय छिपकर वह उसे देखने जाता। उसके हाथ-पैर सहला दिया करता। कहीं से एक-दो फल लाकर खिला आया करता। अपने गाँव के लोगों के हाथों इस प्रकार पैशाचिक दंड पाकर भी नीरू दीदी ने कभी किसी के खिलाफ़ कोई शिकवा-शिकायत नहीं की। उसकी अपनी लज्जा का कोई पार नहीं था। वह अपने को अपराधी मानती थी और उस दंड को उसने इसीलिए हँसते-हँसते स्वीकार किया था। उसकी दृष्टि में वही न्याय था।

शरत् का चिंतातुर मन इस बात को समझ गया था कि अपने अपराध का दंड उसने स्वयं ही अपने को दिया था। गाँव के लोग तो उपलक्ष्य मात्र थे। उसने इन्हें माफ़ कर दिया था, लेकिन अपने को नहीं किया था।

जब वह मरी तो किसी भी व्यक्ति ने उसकी लाश को नहीं छुआ। डोम उसे उठाकर जंगल में फेंक आए। सियार-कुत्तों ने उसे नोच-नोचकर खा लिया।

और यहीं पर उसने 'विलासी' कहानी के कायस्थ मृत्युंजय को सँपेरा बनते देखा था। वह उसके ही स्कूल में पढ़ता था, पर तीसरी कक्षा से आगे नहीं

बढ़ सका। एक चाचा के अतिरिक्त उसका और कोई नहीं था। लेकिन वह चाचा ही उसका परम शत्रु था। उसके बड़े बाग पर उसकी दृष्टि थी। चाहता था मरे तो पाप कटे, इसीलिए रोगी हो जाने पर उसने मृत्युंजय की ज़रा भी खोज-खबर नहीं ली। तड़प-तड़पकर मर जाता बेचारा, यदि एक बूढ़ा ओझा और उसकी लड़की सेवा करके उसे बचा न लेते। इस लड़की का नाम था विलासी। इस सेवा-टहल के बीच वह उसके बहुत पास आ गई। इतनी कि उसने उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। पर समाज के ठेकेदार यह सब कैसे सह सकते थे। उन्होंने मृत्युंजय को समाज से बाहर निकाल दिया। लेकिन मृत्युंजय ने इसकी चिंता नहीं की। उसे अपमानित किया गया, पीटा गया, परंतु न तो उसने प्रायश्चित ही किया, न विलासी को घर से निकाला। उसे लेकर वह दूर जंगल में जाकर रहने लगा। वहीं रहकर वह साँप पकड़ता और जीविका चलाता। सिर पर गेरुए रंग की पगड़ी, बड़े-बड़े बाल, मूँछ-दाढ़ी, गले में रुद्राक्ष और काँच की मालाएँ। उसे देखकर कौन कह सकता था कि वह कायस्थ कुल का मृत्युंजय है।

शरत् छिप-छिपकर उसके पास जाता। उसने साँप पकड़ना, ज़हर उतारने का मंत्र, सभी कुछ उससे सीखा। एक दिन एक ज़हरीला नाग पकड़ते हुए मृत्युंजय चूक गया। नाग ने उसे डस लिया। उसको बचाने के सारे प्रयत्न बेकार हो गए। सात दिन मौन रहने के बाद विलासी ने आत्महत्या कर ली।

वर्षों बाद कथाशिल्पी शरत्चंद्र ने लिखा, "विलासी का जिन लोगों ने मज़ाक उड़ाया था, मैं जानता हूँ, वे सभी साधु, गृहस्थ और साध्वी गृहणियाँ थीं। अक्षय स्वर्ग और सती लोक उन्हें मिलेगा, यह भी मैं जानता हूँ। पर वह सँपेरे की लड़की जब एक पीड़ित और शैयागत रोगी को तिल-तिल कर जीत रही थी, उसके उस समय के गौरव का एक कण भी शायद आज तक उनमें से किसी ने आँखों से नहीं देखा। मृत्युंजय हो सकता है कि एक बहुत तुच्छ आदमी हो किंतु उसके हृदय को जीत कर उस पर कब्ज़ा करने का आनंद तुच्छ नहीं था। उसकी वह संपदा तो मामूली नहीं थी। ...शास्त्रों के अनुसार वह निश्चय ही नरक गई है, परंतु वह कहीं भी जाए जब मेरा अपना जाने का समय आएगा तब इतना तो मैं कह

सकता हूँ कि वैसे ही किसी एक नरक में जाने के प्रस्ताव से मैं पीछे नहीं हटूँगा।"[1]

इन दृश्यों का कोई अंत नहीं था। इन्हीं को देखकर उसने सोचा कि मनुष्य में जो देवता है उसका इतना तिरस्कार मनुष्य अपने ही हाथों से कैसे करता है? इन्हीं प्रश्नों ने उसकी पर्यवेक्षण शक्ति को तीव्रता दी, और दिया संवेदन! इसी संवेदन ने उसे कहानीकार बना दिया।

कहानी लिखने की प्रेरणा उसे एक और मार्ग से मिली। चोरी-चोरी उसने अपने पिता की टूटी हुई अलमारी खोलकर 'हरिदास की गुप्त बातें' और 'भवानी पाठ' जैसी पुस्तकें कभी की पढ़ डाली थीं। ये स्कूल की पाठ्यपुस्तकें नहीं थीं। बुरे लड़कों के योग्य, अपाठ्य पुस्तकें थीं, यही उसको बताया गया था। इसीलिए उसे चोरी का आश्रय लेना पड़ा। वह केवल स्वयं ही उसको नहीं पढ़ता था, अपने साथियों को पढ़कर सुनाता भी था। फिर मन ही मन नए कथानक गढ़ता था।

इसी टूटी हुई अलमारी में से उसने अपने पिता की लिखी हुई अधूरी कहानियाँ भी खोज निकालीं। वह उत्सुक होकर पढ़ना शुरू करता परंतु अंत तक पहुँचने का कोई मार्ग ही पिता ने नहीं छोड़ा था। परेशान होकर वह उठता, "बाबा, इसे पूरा क्यों नहीं करते? करते तो कैसा होता?"

तब मन ही मन उसने अंत की कल्पना की और सोचा—'काश, मैं इस कहानी को लिख पाता।'

पिता का यह अधूरापन भी उसकी प्रेरक शक्ति बन गया।

अभिज्ञता प्राप्त करने के मार्गों की उसके लिए कोई कमी नहीं थी। घर का घोर दारिद्र्य बार-बार उसे भाग जाने के लिए प्रेरित करता रहता। यात्रा दल के अतिरिक्त कभी-कभी वह यूँ ही घर से निकल पड़ता। एक दिन सुप्रसिद्ध सॉलीसीटर गणेशचंद्र कहीं से कलकत्ता लौट रहे थे। देखा, उनके डिब्बे में एक तेरह-चौदह वर्ष का लड़का चढ़ आया है। पहनावे से अत्यंत दरिद्र घर का मालूम होता है। बड़े स्नेह से उन्होंने उसे अपने पास बुलाया। बातें करने लगे। पता लगा कि वह लड़का उनके एक मित्र का नाती है। क्रांतिकारी बिपिनबिहारी गांगुली के

1. शरत् साहित्य, भाग-5, पृष्ठ 121 (विलासी गल्प)

पिता अक्षयनाथ ही उनके मित्र थे। वह रिश्ते में शरत् के नाना लगते थे। कलकत्ता पहुँचकर गणेशचंद्र ने शरत् को अक्षयनाथ के घर भेज दिया।

देवानंदपुर में रहते हुए एक बार फिर वह लंबी यात्रा पर निकल पड़ा। इस बार उसका गंतव्य स्थान था पुरी। यह जाना अनायास और अकारण ही नहीं था। एक परिवार से उन लोगों का घनिष्ठ परिचय था। उसकी स्वामिनी शरत् से आयु में बहुत बड़ी थी और उसे बहुत स्नेह करती थी। अचानक वह बीमार हुई। पति कहीं दूर काम करते थे। किशोर शरत्, जैसा कि उसका स्वभाव था, मन-प्राण से उनकी सेवा में जुट गया। तभी एक ऐसी घटना घटी कि वह उसे गलत समझ बैठा। उसे इतनी ग्लानि हुई कि घर से निकल पड़ा।

चलते-चलते उसका शरीर थक गया। न कहीं खाने की व्यवस्था, न ठहरने की सुख-सुविधा, परिणाम यह हुआ कि तीव्र ज्वर ने उसे जकड़ लिया और उसे एक पेड़ के नीचे आश्रय लेने को विवश होना पड़ा। उसी समय एक विधवा उधर से निकली। शायद उसने पानी माँगा था या वह कराहा था। वह तुरंत उसके पास गई। छूने पर उसका हाथ जैसे तपते तवे पर पड़ा हो। करुणा-द्रवित वह बोल उठी, "हाय राम, तुझे तो तेज़ ज्वर है।"

वह उसे अपने घर ले गई। कई दिन की उसकी ममतापूर्ण सेवा-सुश्रूषा के बाद ही उसे ज्वर से मुक्ति मिल सकी, परंतु तभी एक और ज्वर में वह फँस गया। उस विधवा का एक देवर था और एक था बहनोई। देवर चाहता था, वह उसकी होकर रहे। बहनोई मानता था कि उस पर उसका अधिकार है। लेकिन वह किसी के पास नहीं रहना चाहती थी। एक दिन दुखी होकर उसने शरत् से कहा, "तुम अब ठीक हो गए हो, चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।"

और कहीं जाने को वह चुपचाप उसके साथ निकल पड़ी। इस निकल पड़ने के पीछे मात्र मुक्ति की चाह थी, लेकिन वह अभी कुछ ही दूर जा पाए थे कि उस विधवा के दोनों प्रेमी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने किसी से कुछ नहीं पूछा, जी भरकर शरत् को पीटा और चीखती-चिल्लाती विधवा को वापस ले गए।

फिर उसका क्या हुआ, शरत् कभी नहीं जान सका। लेकिन वह समझ गया कि एक-दूसरे के विरोधी होते हुए भी लुच्चे-लफंगों में एका होता है और भले

लोग अधिक होते हुए भी एक-दूसरे से छिटके-छिटके रहते हैं। कथाशिल्पी शरत्चंद्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'चरित्रहीन' का आधार ये ही घटनाएँ बनीं और इसी समय उसकी रूपरेखा उसके मस्तिष्क में उभरी।

वह पुरी के मार्ग पर आगे बढ़ गया। फिर गाँव-गाँव में आतिथ्य लाभ कर जब वह घर लौटा तो उसका चेहरा इतना विकृत हो गया था कि पहचाना तक न जाता था। सुना गया कि प्रसिद्ध गणितज्ञ पी.बसु के घर उसने आश्रय लिया था।

एकाध बार चोर-डाकुओं के दल में भी पड़ जाने की बात सुनी जाती है। असल में वह इतना दुस्साहसी था कि उसके बारे में नाना प्रकार की कथाएँ चल निकली थीं। उसका स्वभाव था कि अपने मन की बात कभी किसी से नहीं कहता था। परंतु अभिनय करना उसे खूब आता था। झूठ को सच बनाकर चलाने की कला में वह निष्णात था।

इस सब अभिज्ञता के पीछे परिवार की स्थिति थी जो सचमुच बहुत खराब हो चुकी थी। दादी का देहांत हो चुका था। वे थीं तो किसी तरह परिवार के मान की रक्षा करती आ रही थीं। पर अब सबके सामने एक बहुत बड़ा शून्य था। कर्ज़ मिलने की एक सीमा होती है। निश्चय ही 'शुभदा' की कृष्णा बुआ की तरह किसी ने कहा होगा, "अपने बाप से कुछ उपाय करने को, कुछ कमाने को कहो। नहीं तो मैं दुखी गरीब, रुपया-पैसा कुछ न दे सकूँगी।"

इस प्रकार दरिद्रता और अपमान को सहन करने की उसकी माँ की शक्ति सीमा का अतिक्रमण कर गई थी। पर जाए तो वह कहाँ जाए? उसके माता-पिता[1] कभी के स्वर्गवासी हो चुके थे। परिवार छिन्न-भिन्न हो गया था। भाइयों की आर्थिक स्थिति ज़रा भी उत्साहजनक नहीं थी। फिर भी जब उसके लिए देवानंदपुर में रहना असंभव हो गया तो डरते-डरते उसने अपने छोटे काका अघोरनाथ को चिट्ठी लिखवाई। अघोरनाथ ने उत्तर दिया, "चली आओ!"

शरत् फिर देवानंदपुर नहीं लौटा। यहाँ उसका सारा जीवन घोर दारिद्र्य और अभाव में ही बीता। माँ और दादी के रक्त और आँसुओं से इस गाँव के पथ-घाट

---

1. माता : 1891 ई., पिता : 1 जनवरी 1892 ई.।

भीगे हुए हैं। दरिद्रता के जो भयानक चित्र कथाशिल्पी शरत् ने 'शुभदा' में खींचे हैं उनके पीछे निश्चय ही उसकी यह अभिज्ञता रही है। इसी यातना की नींव में उसकी साहित्य-साधना का बीजारोपण हुआ। यहीं उसने संघर्ष और कल्पना से प्रथम परिचय पाया। इस गाँव के ऋण से वह कभी मुक्त नहीं हो सका।

प्रश्न-अभ्यास

1. "उस समय वह सोच भी नहीं सकता था कि मनुष्य को दुख पहुँचाने के अलावा भी साहित्य का कोई उद्देश्य हो सकता है।" लेखक ने ऐसा क्यों कहा? आपके विचार से साहित्य के कौन-कौन से उद्देश्य हो सकते हैं?
2. पाठ के आधार पर बताइए कि उस समय के और वर्तमान समय के पढ़ने-पढ़ाने के तौर-तरीकों में क्या अंतर और समानताएँ हैं? आप पढ़ने-पढ़ाने के कौन से तौर-तरीकों के पक्ष में हैं और क्यों?
3. पाठ में अनेक अंश बाल सुलभ चंचलताओं, शरारतों को बहुत रोचक ढंग से उजागर करते हैं। आपको कौन सा अंश अच्छा लगा और क्यों? वर्तमान समय में इन बाल सुलभ क्रियाओं में क्या परिवर्तन आए हैं?
4. नाना के घर किन-किन बातों का निषेध था? शरत् को उन निषिद्ध कार्यों को करना क्यों प्रिय था?
5. आपको शरत् और उसके पिता मोतीलाल के स्वभाव में क्या समानताएँ नज़र आती हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
6. शरत् की रचनाओं में उनके जीवन की अनेक घटनाएँ और पात्र सजीव हो उठे हैं। पाठ के आधार पर विवेचना कीजिए।
7. "जो रुदन के विभिन्न रूपों को पहचानता है वह साधारण बालक नहीं है। बड़ा होकर वह निश्चय ही मनस्तत्व के व्यापार में प्रसिद्ध होगा।" अघोर बाबू के मित्र की इस टिप्पणी पर अपनी टिप्पणी कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

नवासा	-	बेटी का बेटा, नाती
निस्तब्धता	-	खामोशी
यायावर प्रकृति	-	घुमक्कड़ी स्वभाव
कृतार्थ	-	परोपकार, पुरुषार्थ, संतुष्ट अनुभव करना
अपरिग्रही	-	किसी से कुछ ग्रहण न करने वाला
स्वल्पाहारी	-	कम मात्रा में भोजन करने वाला
आच्छन्न	-	घिरा हुआ
स्निग्धहरित प्रकाश	-	ऐसा हरा प्रकाश जिसमें चमक और शीतलता हो
आँखें जुड़ाने लगीं	-	आँखों में तृप्ति का भाव
पुलक	-	प्रसन्नता
विदीर्ण	-	भेदना
मनस्तत्व	-	विद्या संबंधी
पारितोषिक	-	पुरस्कार
शाद्वल	-	नयी हरी घास से युक्त
अपरिसीम	-	जिसकी कोई सीमा न हो
आजानबाहु	-	जिसकी घुटनों तक बाहें हों
प्रत्युत्पन्नमति	-	प्रतिभाशाली, जिसे उचित उत्तर तत्काल सूझ जाए
हतप्रभ विमूढ़	-	हैरान, कुछ समझ में न आना
आत्मोत्सर्ग	-	आत्मबलिदान
सरंजाम	-	तैयारी, प्रबंध (होना, करना), काम का नतीजा
मूड़ी	-	मुरमुरे, चावल का भुना रूप
निरुद्वेग	-	शांत, उद्वेगरहित
खिरनियाँ	-	पीला फल, एक फलवृक्ष
कमचियाँ	-	बाँस आदि की पतली टहनी
निविड़	-	घना, घोर
स्फुरण	-	काँपना, हिलना, फड़कना
गल्प	-	कथा, कहानी
धर्मशीला	-	वह स्त्री जो धर्म के अनुसार आचरण करे
पदस्खलन	-	अपने मार्ग से भटकना, पतन होना
अपाठ्य पुस्तकें	-	न पढ़ी जाने योग्य पुस्तकें
अभिज्ञता	-	जानना

मोहन राकेश

(सन् 1925-1972)

जन्म जंडीवाली गली, अमृतसर (पंजाब) में। हिंदी और संस्कृत में एम.ए। लाहौर, मुंबई, दिल्ली, शिमला, जालंधर आदि में विविध नौकरियाँ कीं, पर मिज़ाज स्वतंत्र लेखन का ही रहा। अध्यापन भी किया और संपादन भी। 'सारिका' के संपादक भी रहे।

मोहन राकेश नयी कहानी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर माने जाते हैं, किंतु नाट्य लेखन के क्षेत्र में उनका विशिष्ट स्थान है। नाटक के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक पर **संगीत नाटक अकादमी** ने सन् 1959 में उन्हें पुरस्कृत भी किया। सन् 1971 में नाट्य लेखन के लिए **साहित्य अकादमी** से सम्मानित हुए।

इंसान के खंडहर, नए बादल, जानवर और जानवर, एक और ज़िंदगी (कहानी-संग्रह); अँधेरे बंद कमरे (उपन्यास); आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे अधूरे, पैर तले की ज़मीन (नाटक); अंडे के छिलके तथा अन्य एकांकी, रात बीतने तक (एकांकी-संग्रह); आखिरी चट्टान तक (यात्रावृत्त) बकलम खुद, परिवेश (निबंध); बिना हाड़-मांस के आदमी (बालोपयोगी कथा-संग्रह) इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

मकबूल फ़िदा हुसैन

(सन् 1915)

आधुनिक भारतीय चित्रकला के प्रमुख स्तंभ। जन्म शोलापुर (महाराष्ट्र) में। सिनेमा होर्डिंग के पेंटर के रूप में काम शुरू किया और आज खुद कई फ़िल्मों के निर्माण से जुड़े हुए हैं। हमेशा चर्चा और विवादों में बने रहने वाले हुसैन ने ललित कला अकादमी की प्रथम राष्ट्रीय प्रदर्शनी में प्रथम पुरस्कार पाया। उन्हें

सन् 1966 में **पद्‌मश्री** से और सन् 1973 में **पद्‌मभूषण** से अलंकृत किया गया। सन् 1967 में *थ्रू द आइज़ ऑफ़ ए पेंटर* नामक वृत्तचित्र बनाया जोकि बर्लिन में पुरस्कृत हुआ। चर्चित चित्रकार हुसैन ने कई शृंखलाओं में चित्र बनाए। हुसैन ने युवा कलाकारों के लिए कला का एक नया और विशाल बाज़ार खड़ा किया।

विष्णु प्रभाकर

(जन्म सन् 1912)

प्रेमबंधु और **विष्णु** नाम से लेखन की शुरुआत की। बाद में प्रभाकर भी जुड़ गया। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले के एक गाँव में हुआ लेकिन बाल्यकाल हरियाणा में गुज़रा। वहीं पढ़ाई हुई उसके बाद नाटक कंपनी में अभिनय से लेकर मंत्री तक का काम किया। मौलिक लेखन के अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर 60 से अधिक पुस्तकों का संपादन भी कर चुके हैं।

कहानी, उपन्यास, जीवनी, रिपोर्ताज, नाटक आदि विधाओं में रचना की। आवारा मसीहा (शरत्‌चंद्र की जीवनी); प्रकाश और परछाइयाँ, बारह एकांकी, अशोक (एकांकी-संग्रह); नव प्रभात, डॉक्टर (नाटक); ढलती रात, स्वप्नमयी (उपन्यास); जाने-अनजाने (संस्मरण) आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और समाज-सुधार का स्वर प्रमुख रहा जोकि सरकारी नौकरी छोड़ने का कारण बना। 'आवारा मसीहा' के लिए **साहित्य अकादमी** पुरस्कार। दिल्ली में रहकर स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य में रत।